समुदाय व संरक्षण

समुदाय आधारित जैवविविधता संरक्षण तथा आजीविका सुरक्षा

KALPAVRIKSH
कल्पवृक्ष
Environmental Action Group

अंक ५, नं.२ अप्रैल २०१३-अक्टूबर २०१३

विषय सूची :

संपादकीय

❖ चिंतन– कल, आज, और कल
   १. कृषी जैवविविधता – कल और आज।
   २. कृषी की समस्या – ग्रामीण गरीबों और प्राकृतिक संसाधनों पर अपिवर्तनीय प्रभाव।
   ३. कृषी परिस्थितकिय – स्वस्थ भविष्य की पहल।

❖ समाचार और घटनाक्रम
- एफ.ए.ओ. का विकासशील देशों से कीटनाशकों के उपयोग कटौती का आग्रह।
- लाभकारी कृषि के लिये जलवायु अध्ययन।
- अध्ययन का अनुमान कि खराब उत्पादन से सलाना २ लाख करोड़ का नुकसान।
- कांग्रेस का आंकलन की भोजन अधिकार कानून से यू.पी., बिहार, गुजरात को फायदा।
- विदर्भ जन आंदोलन समिति का दावा कि किसानों की आत्महत्या में बढोत्तरी।
- मोनसेटों के ग्लाइफोसेट का कैंसर से संबंध, एक अध्ययन का दावा।
- मोनसेटों/माहिको और अन्य के खिलाफ आदराधिक मामले की सुनवाई में तेजी।

❖ बहस, दृष्टिकोण और विश्लेंषण
- भारतीय जैवतकनिकी नियंत्रण प्राधिकरण बिल २०१३।
- जी.एम.ओ. के प्रभाव और उससे जुड़ी चिंताये।
- डब्लू.टी.ओ. समझौता; भारत की जीत एक गलतफहमी या वास्तविकता।
- भारतीय जैवतकनिकी नियंत्रक प्राधिकरण बिल २०१३ पर विश्लेषण।
- बी.आर.ए. आइ बिल से जुड़ी कमियां और अन्य मुद्दें।

❖ केस स्टडी
- खाद्य संप्रभुता ले लिये मोटे अनाज आधारित जैवविविधता वाली खेती को पुनर्जीवित करने की पहल।
- एक छिप्पी धरोहर : दवाई के गुण वाला चावल।

संपादकिय

बौद्ध दार्शनिक नागर्जुन ने राजा को सलाह दिया था कि वह 'परेशानी से गुजर रहे अपने राज्य के किसानों को बीज और भोजन को उपलब्ध करायें।'

केवल इतिहासकार ही इस बात को जान सकता है कि एक राजा, दार्शनिक कि सलाह को मानेगा? दार्शनिक कि सलाह के २००० वर्ष बाद ऐसा जान पड़ता है कि उसकी आवाज सुनी गयी है। सितंबर के शुरु में जब भारतीय संसद के दोनों सदनों ने राष्ट्रीय सुरक्षा कानून ध्वनि मत से पारित करके देश को दिया तो ऐसा लगा कि दार्शनिक कि सलाह का सम्मान जाने–अनजाने हुआ है। यह कानून जरुरत मंदो और इसकी वकालत करने वालों के साथ–साथ सभी के लिये एक सुखद शुरुआत है। इस कानून की चर्चा में संसद ने ३०० से अधिक संशोधनों पर विचार किया था। विचार किये गये संशाधनों में अधिकतर संशोधन इसपर थे कि जन वितरण प्रणाली (पी.डी.यस.) को सर्वव्यापी बनाया जायें, कानून के अंदर बतायें गये अनाजों के साथ दाल, तेल और नमक को भी वितरित किया जाये, साथ ही दी जानेवाली मात्रा को भी बढ़ाया जायें। इसके अलावा यह भी बताया गया कि जरुरत मंदों के लिये समुदायिक साझा रसोई जैसी योजनाओं की शुरुआत की जायें। आर्थिक विशेषज्ञोंको यह कानून रास (पसंद) नही आया और इसकी तीखी आलोचना मीडिया में की गयी है। इस कानून को अमल में लाने को लेकर सभी की मजबूरी लगभग एक जैसी ही है। इस कानून के बारे में कुछ लोगों में डर फैलाया कि इससे सही मायनों में अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुंच सकता है। उनका तर्क है कि जन वितरण प्रणाली में गड़बड़ीयों के चलते बहुत ज्यादा पैसा बेकार चला जायेगा। इस प्रकार की चिंताओं को वास्तविकता पर भी सवाल उठायें गये। क्योकि, क्षमता और गणनाओं में त्रुटियों का मुद्दा गलत मान्यताओं पर आधारित जान पड़ते है। जबकी आर्थिक नुकसान के उठाये गयें मुद्दे कमियों को दूर करने के सवाल से संबंधित है जिनको संस्थागत सुधारों (जैसे की कुछ राज्यों में सफलता पूर्वक किया है) के तहत किया जा सकता है, जिसे अभी पूरी तरह किया जाना बाकी है। आम चुनाव के नजदीक होने के कारण इस कानून और खाद्य सुरक्षा को लेकर श्रेय लेने की होड़ लगी हुई है जिसे उचित नही ठहराया जा सकता है और इसको लेकर (कानून) सभी एकमत भी नही हैं।

जिस दार्शनिक की चर्चा शुरु में की गयी है उसी दार्शनिक ने राजा को यह सलाह भी दी थी कि अभाव (कमी) के समय में कीमतों और लाभ को उचित तार्किक स्तर पर रखने के लिये चोरों और डकैतों को समाप्त किया जायें। सितंबर में आये महंगाई के आंकडे बताते है कि थोक मूल्य सूचकांक सात महिनों के उच्चतम स्तर ६.४६ पर और खाद्य महंगाई दर १८.४० प्रतिशत थी। जिसका परिणाम यह हुआ कि प्याज की किमतों पर लगातार बढोत्तरी होती रही जो उच्चतम स्तर ३२३ प्रतिशत तक गयी थी। प्याज के व्यवसाय में जमाखोरी और कीमतों के साथ खिलवाड बड़े सामान्य तौरपर जुड़ा है। यदि देखा जाये तो यह एक तरह से चोरीही है। प्याज से जुड़ी समस्या के लिये कृषि मंत्री शरदपवार मौसमी कमी को कारण बताते है। यह भी एक संयोग है कि कृषि मंत्री की पार्टी एन.सी.पी. का नासिक में राजनैतिक पकड़ है और नासिक का देश के कुल प्याज के व्यापार में ७० फीसदी की भागीदारी है।

एक दशक से ज्यादा समय से भारत की कृषि समस्याओं से जूझ रही है। किसानों परण ऋण का बोझ और आत्महत्या कृषि से जुड़ी समस्याओं की ही देन है। भारत के कृषि मंत्री कृषि की समस्याओं को लेकर गंभीर नही है बल्कि केंद्रिय मंत्री देश के लोगों के लिये भोजन उपलब्ध कराने के लिये अनुवांशिक संवर्धित फसलों की आवश्यकता को बताते हुये लोगों का ध्यान समस्याओं से हटाना चाहते है। उन्होने अनुवंशिक संवर्धित फसलों से जुड़ी लोगों की चिंताओं को भी नकारा है। उनके जी.एम.ओ. के प्रति लगाव को उनको सामाजिक पहल खाद्य सुरक्षा कानून की अवमानना के रुप में देखा जा सकता है। हाल हि में मंत्री जी ने चार राज्यों में चुनाव के परिणाम को लेकर राष्ट्रिय सलाहाकार समिती को आडे हाथों लिया है जिसे मुद्दे से ध्यान हटाने के रुप माना जा सकता है। इन सबसे जान पड़ता है कि किसानों और कल्याणकारी योजनाओं के लाभार्थियों के लिये आने वाला समय कठिण है।

कृषि की संसदीय स्टैडिंग समिति, जिसमें सभी राजनैतिक दलों के सदस्य होते है, समिति ने अपनी रिपोर्ट में जी.एम.ओ. को लेकर चिंता जताई थी। इसी प्रकार, सर्वोच्च न्यायलय के जी.एम. पर दायर जनहित याचिका के संदर्भ में गठित तकनीक विशेषज्ञ समिति (टी.ई.सी.) ने अपनी चिंता जताई है। १९६२ में रचेल कैरसन ने अपनी किताब 'साइलेंट स्प्रिंग' मे लिखा है कि ''यदि हम इन रसायनों को खाने और पीने के साथ अपनी प्रत्येक हड्डीयों तक ले जाकर जीने जा रहे है तो यह जरुरी है कि हम इनकी प्रकृति और शक्तियों के बारे में पूरी जानकारी रखे।''

लगभग ५० वर्षो के समय से हमें जानकारी है की हमारे सामने जो भी चिंतायें है वो स्वास्थ, पर्यावरण, किसानों के ऊपर ऋण के बोझ, बड़े अंतर्राष्ट्रीय बीज प्रतिष्ठानों की मजबूत पकड़, बीजों की विविधता और संप्रमुता से जुड़ी हुई है। इनसब के बावजूद भी हाल हि में संसद की पटल पर भारतीय जैवतकनीकी नियंत्रक प्राधिकरण बिल को रखा गया था। इस बिल में ऐसे प्रावधान है जो जी.एम.फसलों को अनुमति देने की प्रक्रियां में तेजी लाना है, जिसे कई समितियों की अनुशंसा पर रोक कर रखा गया था। लेकिन यह भी वास्तविकता है कि कानूनी वैधता में नैतिक वैधता शामिल नही होती है। जी.एम. फसलों के विषय को लेकर इस तथ्य की अनदेखी की गयी है कि

विश्व में जी.एम. फसलों के कुल उत्पादन वाले क्षेत्र का ९० प्रतिशत क्षेत्र है। अधिकतर देशों ने जी.एम.फसलों को या तो खारिज कर दिया है या फिर उप प्रतिबंध लगाया है। जी.एम. फसलों की सफलता और प्रभावशीलता को लेकर महत्वपूर्ण सवाल उठते है। जैसे इनकों बताया जा रहा है यदि उसमे तथ्य है तों किसानों द्वारा बी.टी. कॉटन को बड़े स्तर पर अपनाने के बावजूद भी मृणग्रस्तता और आत्महत्या में कमी क्यो नही आयी है? खाद्य सुरक्षा और गरीबी की आड़ में जी.एम. वाले भोजन को बढ़ावा देना या इसके पक्ष में वकालत करना आधार हीन है। क्योंकि, यह उत्पादन का मुद्दा न होकर वितरण से जुड़ा हुआ मुद्दा है। भारत में जी.एम.फसलों के बिना अनाजों का उत्पादन बहुतायत में होता है। इसके बाद भी २०० मिलियन लोग भूख से प्रभावित है क्योंकी अनाजों का सरकारी भंडार गृहों में प्रबंधित करने में लापरवाही की जाती है। इसके साथ ही अप्रभावी और भ्रष्ट जन वितरण प्रणाली मी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। जनवितरण प्रणाली में कमियों के कारण जनवितरण प्रणाली को ही बंद कर देने का कोई प्रश्न ही नही उठता है। पी.डी.यस ग्रामीण भारत के लिये सामाजिक सुरक्षा देने में उपयोगी और महत्वपूर्ण है क्योंकी, बाजार स्वयं गरीबों की खरीदनें की क्षमताओं को नही बढ़ा सकते है। तमिलनाडु और छत्तीसगढ़ में पी.डी.यस सुधारों को लागू किया गया है जिसके परिणाम भी सकारात्मक रहे है। इन राज्यों में प्रभावी पी.डी.यस. को लेकर लोगों ने कई तर्क दियें है। परन्तु, जैव तकनीकी नियंत्रक प्राधिकरण को जिस रुप में प्रस्तुत किया जा रहा है उससे अलग इस बिल में ऐसे पहलू है जिससें कुछ अंतर्राष्ट्रीय संगठनों (जैसे मोंसेन्टो) के हाथों पर लाभ और शक्तियां केन्द्रित हो जायेगी। जी.एम. प्रकृति में बदलाव लाने वाली वह तकनीकि है जिससें पी.डी.यस. से जुड़े मुद्दों को हल नही किया जा सकता है। यह भी जरुरी है कि हम विरोधाभासी उद्देश्यों के लिये (जैसे बी.आर.ए.आई.) काम करना बंद करदे जिससें हमारी खाद्य संप्रभुता पर संकट नही पड़ें। बल्कि हमें समय की मांग के अनुसार जैसे पी.डी.यस. और ऐसी नीतियों का विकास जो गैर जी.एम. से जुड़ी कृषि परिस्थितिकिय से जुड़ी हो, पर ध्यान देना चाहियें। इसके बावजूद यदि उत्पादन का मुद्दा ही (जो कि नही है!) माना जाता है तो सवाल उठता है कि, क्यो नहीं सुरक्षित विकल्प जैसे कृषि परिस्थितकीय को अपनाते है? कृषि परिस्थितकीय खेती करने का एक तरीका है और जिसें पूरे विश्व में सम्मान मिला है। इसमें सभी को शामिल करके सहभागिता की पहल, जीविका की उपलब्धता शहरों में विस्थापन पर नियंत्रण, छोटे किसानों का सशक्तिकरण और परिवारिक कृषि को बढ़ावा देना शामिल है। इसका अनुमोदन संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी किया है।

भोजन के अधिकार के पक्ष में निर्णय करके कानूनी मान्यता देना एक तर्कसंगत सकारात्मक पहल है। कुछ समय पहले बाली में आयोजित डब्लू.टी.ओ. में सब्सिडी के मुद्दे में विकासशील देशों के पक्ष और दबाव के परिणाम में यू.यस.ए. (अमेरिका) के दबाव की अहम भूमिका थी। बाली में हुयें घटनाक्रम और परिणामों की आलोचना की जानी चाहीये थी। भारत को लोगों के कल्याणकारी और मानव अधिकारों के पक्ष में तर्क रखना चाहियें था कि उसके यहां के भुखमरी और कुपोषण से जुड़े गंभीर आंकडे लोगों के भोजन के अधिकार के उल्लंघन को बताते है। इसलिये, सरकार के इससे जुड़े प्रयासों को डब्लू.टी.ओ. की समीक्षा से बाहर रखना चाहियें। एक प्रेक्षक ने बताया कि ''बाली के बाद बाहर से बड़ी सब्सिडी प्राप्त कृषि उत्पादों की अधिकता या मरमार की आशा करनी चाहिये। इससे भारतीय किसानों को एक नयी चुनौती का सामना करना पड़ेगा जो पहले से ही घरेलू नीतियों से परेशान है।''

हमे याद रखना चाहिये कि भोजन कोई वस्तु नही है (चाहें बाजार हमें ऐसा मानने के लिये बाह्य करे!)। भोजन इतिहास की स्पंदन के साथ गतिशील प्रस्तुतीकरण है। इसे बाजार और तकनीक की सनक के साथ एक बाह्य के रुप में सीमित दायरे में नही देखा जाना चाहियें। हमे यह भी याद रखना चाहियें कि यह चैरटी का मुद्दा न होकर न्याय का मुद्दा है। भोजन संपूर्ण रुप में मूलभूत महत्वपूर्ण अधिकार है। जो भी इसे हमारे लिये देते है, वो हमारे से श्रेष्ठ सम्मान के अधिकारी है।

❖ चिंतन – कल, आज और कल

१. कृषि जैवविविधता – कल और आज

कथलीन डी. मोरिसन (morrison@uchicago.edu)

भारत सरकार के कृषि मंत्रालय के विभाग पाद्य किस्मों की सुरक्षा और कृषक अधिकार प्राधिकरण का उद्देश्य कृषि जैवविविधता की सुरक्षा को सुनिश्चित करना है। कृषि जैवविविधता की सुरक्षा जैवविविधता का एक महत्वपूर्ण आयाम है, जिसमे उगायें गयें पौधों और पालतू जानवरों को शामिल किया गया है। इसकी भूमिका आहार (भोजन) और पर्यावरण की गुणवत्ता को बढ़ाने और जोखिम को कम करने में महत्वपूर्ण है। इससे संबंधित विभाग की उपस्थिति को सकारात्मक सोच के साथ लिये जाने की आवश्यकता है। इसकी पहल में कृषि जैवविविधता से जुड़े विशेष क्षेत्र जो कि भारत की कुल भूमि का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, उनको शामिल किया गया है। इस तरह के महत्वपूर्ण जिलों को आदिवासी जनसंख्या से जोड़ा गया है। क्षेत्र और आदिवासियों को जोड़ने का प्रयास बताते है कि कृषि के महत्वपूर्ण पक्ष और उत्पाद अभी भी मुख्य धारा की कृषि कार्यो के बाहर है। जबकि कृषि का यह रुप इतना प्राचीन जान पड़ता है कि यह आदि समय से जुड़ा है। कृषि विशेषज्ञों ने भी कृषि जैवविविधता को बनायें रखने के लिये इसे उतना ही भविष्य के लियें महत्वपूर्ण बताया जितना कि ये पहले थे। आधुनिक कृषि परिस्थितकिय में कृषि से जुड़े पहले के पक्ष को स्थान और पहचान दी गयी है जिसमें फसलों की व्यवस्था, बंजर और विनाशकारी जीवों का प्रबंधन भी शामिल है। भारतीय कृषि

विशेषज्ञों ने कृषि के नये तरीकों जैसे जैविक खेती और जैव सक्रियता को कुछ क्षेत्रों में शुरु किया है। सर अलबर्ट हावर्ड को उनके द्वारा १९४० में किये गये कार्यों के कारण जैविक खेती का पिता माना जाता है। उन्होंने कृषि पर अपने कार्यो में पश्चिमी भारत में कृषि पर अनुभवों का शामिल करके लोगों के सामने लाया हैं। उन्होनें सम्राज्य के सेवाकाल में अपने कार्य ''आतंरिक प्रक्रिया'' में खाद के उपयोग द्वारा भूमि सुधारों की प्रक्रियां का संकलन किया था। अत: सही मायनो में जैविक खेती भारतीय कृषि परंपराओ की आभारी है।

दक्षिण भारत की कृषि और लोगों का प्राकृतिक पर्यावरण से जुड़ाव के विषय पर अपने शोध में मैने इस बात को समझने का प्रयास किया कि कैसे और क्यों समय के साथ कृषि से जुड़े तौर–तरीकों में परिवर्तन हुआ है। पांच हजार वर्ष पहले से अभी तक उत्तरी कर्नाटका के अर्द्धशुष्क के सुदूर जिलो के किसान विविधता कृषि तरीकों को अपनाते थे। इन तरीकों की ये विशेषता होती थी कि, ये कृषि से जुड़े जोखिमों (जैसे बहुत कम और गतिशील वर्षा) का सामना करने में सक्षम थी। दसवी शताब्दी में हमेशा जल युक्त नदियों से जुड़ी नहरें या लम्बाई और निचलें बाघों का प्रचलन कृषि से जुड़े हुये थे। कृषि के शुरु के समय में किसानों ने ऐसे साधनों को बनाया था जो पानी और मिट्टी को नियंत्रित करते थे। लोंह काल (१२००–३०० ई. पू.) के तलाबों में सिंचित बांध और क्षरण वाली दिवाल आपस में जुड़ी होती थी। इस व्यवस्था का फायदा आद्रता फसलों जैसे केला, गेहूं और बार्ली को मिलता था क्योकि इन फसलों के लिये आवश्यक पानी मिलता था। लौह काल में स्थापित नगरों के लोग भी महत्वपूर्ण स्तर पर जंगली पौंधों और जानवरों पर निर्भर रहते थे। इसके अलावा अपनी भोजन की जरुरतों को पूरा करने के लिये विभिन्न किस्मो के मोटे अनाजों और दालो पर भी निर्भर करते थे। यह बताना कठीन है कि इनको अंत: फसल वाले खेतों में उगाया जाता था। परंतु, ऐसा लगता है कि संमवत: इन उपायों को फायदो जैसा हानिकारक जीवों का प्रतिरोध, नाइट्रोजन का निर्धारण, स्थानीय और समय से जुड़े लाभकारी प्रयास और अधिक पैदावार को ध्यान में रखकर किया जाता था।

मध्य काल (१२००–७०० ई. पू.) चावल और अधिक मूल्य की फसलों के लिये नहर सिंचाई के लिये हुआ तो बड़ी संख्या में जलाशयों (घराओंवाले) और टैकों का विकास उन सभी स्थानों में हुआ जो नहरों की पहुंच से बाहर थें। इन जलाशयों के साथ जुड़ी विशेषतायें जैसे चबूतरे और गली हुई धास के क्षेत्रों का उपयोग मैदान में शुष्क खेती से जुड़े जोखिम को कम करने के लिये किया जाता था।

विजयवाडा शहर के चारों ओर किये गये पुरातात्विक अध्ययन से पता चला है कि गांव के समीप शुष्क (सूखी) कृषि भूमि को खाद के उपयोग से छोटे स्तर पर प्रबंधित किया जाता था। इस समय में नमी वाली फसलों को हाथ से पानी लगाने का काम केवल बगीचों वाली फसलों जैसे सब्जियों, फलों और फूलों तक ही सीमित था। जबकि धान की खेती उन क्षेत्रों में होती थी जहां पर पानी की उपलब्धता हो। इस समय में एक बडें क्षेत्र को, गांव के जानवरों और घूमंतू चरवाहों के उपयोग के लिये निर्धारित (तय) किया गया था। १६ वी शताब्दी में विविधता वाली कृषि की जानकारी मिलती है, जिसमें गीले खेतों, बगीचों, सूखे खेतों और चराने के क्षेत्र शामिल है, ये सभी क्षेत्र उस समय की राजनैतिक परिस्थितियों से जुड़े हुये थे। इस स्थिति का आंकलन समाजिक असमानता और शोषण पर आधारित था। कृषि से जुड़े उत्पादन में लचीलापन होने के साथ कुछ ऐसे भी खेतों के बारे में जानकारी मिलती है जो ६०० वर्षों तक लगातार उपयोग में थे। क्षेत्रीय कृषि के विषय में लोगों को ऐतिहासिक समय से आजतक की जानकारी है। वर्तमान में हमारे द्वारा किया जा रहा काम, जले हुये बीजों, तने और पौधों के अन्य हिस्सों से जुड़ा हुआ है, जिनको पुरातात्विक स्थानों पर संरक्षित करके रखा गया है। यह एक शुरुआत हैं और ऐसी आशा है कि आने वाले समय में हम लोगों को यह बताने में समर्थ होंगे कि पुराने समय में कौन–कौन सी प्रजातियों को उगाया जाता था। यदि संभव हुआ तो हमारा प्रयास रहेगा कि हम पुराने समय की कृषि जैवविविधता पर दस्तावेज तैयार करे, जिसमें विभिन्न प्रकार के एक तरह के लक्ष्णों वाले खेतों की पहचान को शामिल किया जायें। इससे जुड़ी प्रक्रिया धीमी है। शुरुआत में चावल पर काम किया जा रहा है। किये जा रहे कार्य में बैंगलोर स्थित ग्रीन फाउंडेशन का महत्वपूर्ण योगदान है जिसके हम आभारी है।

ग्रीन फाउंडेशन ने १०० से ज्यादा परंपरिक चावलों को संरक्षित रखा है जिनका हम अपने काम में उपयोग कर रहे है। हम आधुनिक किस्मों को भूगर्म और लक्ष्णों की विशेषताओं पर काम कर रहे हैं ताकि पुरानी विविधता को समझने में सहायता हो सके। हमें जानकारी है कि स्थानीय किसान हजारों सालों से मोटे अनजों की विभिन्न किस्मों को पैदावार करते आ रहे है। इन किस्मों में से कुछ किस्में स्थानीय है और कुछ किस्में अफ्रीका जैसे क्षेत्र से आयी हैं। परन्तु कुछ प्रमुख किस्मों में परिवर्तन को लेकर अभी कोई स्पष्टता नही है क्योकि विविधता का स्वरुप बड़ा व्यापक है जैसे: दाल की एक किस्म में भी विविधता मौजूद है। किस्मों की मिट्टी से गहरा संबंध है, एक किस्म किसी विशेष प्रकार की मिट्टीयों से संबंधित होती है। जिसे योजना बद्ध तरीके से वर्तमान मौसमी परिस्थितियों के अनुसार उपयोग में लाया जा सकता है। इसके अलावा सुगंध का भी विशेष प्रकार के व्यंजनों से है जो मौसम और उत्सवों से जुड़े हुये है। यदि हम हमारे काम से सफल होते है, तो हमारे पास पुरातन (पुराने) समय की कृषि तरीकों के बारे में अच्छी जानकारी होगी। परन्तु, हमारे पास मौजूद उपलब्ध कृषि जैवविविधता हमे फसलों पर हो रहे परिवर्तन के प्रति सतर्क करती है। हमारा काम बीते समय पर हैं, वही ग्रीन फाउंडेशन वर्तमान पर काम कर रहा है और उनके काम से ही हमे बीते समय पर काम करने की प्रेरणा मिली है।

कृषि जैवविविधता में किस्मों की विविधता के साथ–साथ फसलों से जुड़ी व्यवस्था और की जाने वाली योजना शामिल है। यह किसी भी तरह से इतिहास के विषय तक सीमित नही है और नही यह मुख्यधारा की कृषि से बाहर है। दक्षिण एशिया के किसानों के ज्ञान और अनुभवों में कृषि की दीर्घकालिक (लंबे लंबे समय की) सफलता और संपूर्ण पर्यावरण शामिल है। इस तथ्य को हावर्ड और अन्य लोगों ने पहचान कर स्वीकार्य किया है। भारत के कृषि के विशेष क्षेत्र विभिन्न समुदायों के किसानों के प्रयासों के लिये समर्पित है। इन किसानो ने विभिन्न प्रकार की प्रजातियों, किस्मों, नस्लों और फसलों के प्रबंधन का विकास किया था। हमे इस धरोहर पर खुशी और गर्व करते हुयें इसे संरक्षित करना चाहियें, ऐसा हमें किसी और के लिये नही बल्कि हमारे आज और कल की भलाई के लिये करना चाहिये।

नोट: लेखक दक्षिण एशिया भाषा और क्षेत्र केंद्र, न्यूकाम के निदेशक न्यूकाम परिवार और प्रोफेसर, ऐन्थ्रोपोलाजी, शिकागों विश्वविद्यालय है।

२. कृषि की समस्या: ग्रामीण गरीबों और प्राकृतिक संसाधनों पर अपरिवर्तनीय प्रभाव

कुमार शिरालकर (kumarshiralkar@hotmail.com)

भारत में कृषि की समस्या सीधे तौर पर ग्रामीण भारत के मेहनत करने वाले लोगों को प्रभावित करती है। ऐसे लोगों की जीविका और जीवन की अन्य जरुरतें कृषि और कृषि से जुड़ी व्यवस्थाओं पर निर्भर है। समुदाय के ये कमजोर लोग ऐतिहासिक समय से सोपी गयी बहुआयामी विपत्तियों से जूझ रहे है। हाल के समय में सामने आयी समस्याऐं नयी उदारवादी नीतियों के कारण सामने आयी है। नयी समस्याओं ने लोगों के जीवन में और ज्यादा परेशानी पैदा की है। यह सभी को पता है कि ऐतिहासिक समय में लोगों के एक बहुत बड़े हिस्से को भूमि और अन्य संपत्ति के अधिकार से वंचित किया गया था। जबकि ये अधिकार उत्पादन और उपयोग के तात्कालिक मान्यताओं पर आधारित थी और अधिकारो की मनाही के लिये धार्मिकता का सहारा लिया गया था। वर्तमान में भी दलित, आदिम जनजाति और लोगों के एक समूह के साथ पिछडा वर्ग को कुछ क्षेत्रों में भूमि को अपने पास रखने और उसपर खेती करने की अनुमति नही है।

स्वतंत्रता के बाद केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा घोषित की गयी कथाकथित भूमि सुधार की नीतियों के तह्त कुछ राज्यों जैसे केरल, पं. बंगाल और जम्मू और काश्मीर के अलावा अन्य राज्यों ने भूमिहीनों और गरीबों को भूमि वितरित करने के कोई गंभीर प्रयास नही किये है। इसके विपरीत भूमिका उपयोग और मलिकाना हक बडें–बडें भू स्वामियों के हाथ में है (जो पहले मध्यम और कमजोर किसानों की थी)। भूमि की यह व्यवस्था केंद्र और राज्यों द्वारा विकास के लिये पूंजीवादी व्यवस्था को शुरु से अपनाने के कारण हुई है। जब से भारत सरकार विश्वबैंक, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक कोष और विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्यों को पूरा करने को बाह्य हुई तो कई कारणो से छोटे और हाशियें पर पड़े किसानों की संख्या में बेतहाशा बृद्धि हुई है। भूमि पर मलिकाना हक देने की जटिल प्रक्रियां को गरीब और मध्यम स्तर के किसानों के विरुध्द माना गया है और इसे पूंजीवादी भूस्वामीयों, व्यवसायीयों के पक्ष में होने के साथ एकाधिकार को बढ़ाने वाली बताया गया है। आंकडें बताते है कि केवल १० प्रतिशत लोगों के पास ५५ प्रतिशत कृषि वाली भूमि है और ६० प्रतिशत लोगों के पास केवल ५ प्रतिशत कृषि भूमि है। २०१०–११ की कृषि जनसंख्या के आंकडें बताते है कि छोटे और हाथियें पर पड़े किसानों के पास २ हेक्टेयर से कम है जो कुल कृषि भूमि का ८५ प्रतिशत और कुल कृषि किये वाले क्षेत्र का ४४ प्रतिशत है। कृषि भूमि का गैर कृषि कार्यों के लिये बढ़ती मांग के कारण कृषि के लिये उपलब्धता सीमित होती जा रही है। १९७०–७१ के आंकडे बताते है कि खेती के उपयोग के लिये भूमि का औसत आकार २.८२ हेक्टेयर था जो १९९०–९१ मे १.५५ हेक्टेयर, २०००–२००१ में १.३३ हेक्टेयर और २०१०–२०११ में यह आंकडा १.१६ हेक्टेयर तक पहुंच गया था। इस स्थिति के लिये उदारवादी व्यवस्था को जिम्मेदार माना गया है।

कृषि से जुड़े मुद्दों को सही मायनो में समझने के लिये भूमिहीन कृषि मजदूरों, अन्य ग्रामीण मजदूर, गरीब और मध्यम श्रेणी के किसानों की ज्वलंत समस्याओं और मुद्दों पर ध्यान देने की जरुरत है। प्रमुख समस्याओं में से एक स्थायी बेरोजगारी और थोपा गया पलायन है। १९९१ से चल रही नयी उदारवादी नीतियों के कारण कृषि क्षेत्र में रोजगार में बहुत गिरावट आयी है। कृषि क्षेत्र का पूरी तरह से मशीनीकरण से ग्रामीण क्षेत्रों में लाखों लोगों की जीविका और जीवन में तबाही आयी है।

कृषि में उपयोग आनेवाली मशीनों से जुड़े आंकड़े किसी सदमे से कम नही है। कृषि कार्यों के लिये उपयोग में आनेवाला टैक्टर की संख्या में बेतहाशा बृद्धि हुई है। १९८२ मे ४९८२ टैक्टर उपयोग में थें, २००३ में २२,६०० टैक्टर और दिसंबर २०१२ के आंकडे बताते है कि ४,१९,२७० टैक्टर उपयोग में थे। आंकडो की माने तो प्रति १००० हेक्टेयर कृषि भूमि पर १६ या इससे ज्यादा टेक्टर हमारे पास है। इसी प्रकार १९८२ में हारवेस्टर (कटाई मशीन) ३८६ थी, २००३ में आंकडा ४,०७३ और २०१० में १०,००० हारवेस्टर कृषि क्षेत्र में उपयोग किये जा रहे थे। आज भी हमारी कुल कार्यशील जनसंख्या का ५२ प्रतिशत (२५.५ करोड़) अपनी जीविका के लिये कृषि पर निर्भर है। २००१ से २०१० के बीच कृषि क्षेत्र में मजदूरी में बढोत्तरी ९ प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से रही है जबकि औद्योगिक क्षेत्र में यह बढोत्तरी ६.३ प्रतिशत की रही है। महंगाई के आंकडे बताते है कि उपयोक्ता मूल्य सूचकांक में कृषि मजदूरी के लिये महंगाई २०१२ में १२.३० प्रतिशत की दर से बड़ी जबकि २००१ से २०१२ के बीच औसत वार्षिक बृद्धि १०.५ प्रतिशत की रही है।

समान्यतौर पर कृषि समस्या से जुड़े तर्क कृषि के उत्पादन पर केन्द्रित रहे है। कृषि उत्पादन का जी.डी.पी. में भागीदारी के लिये कृषि से जुड़े उद्यगों की व्यवहारिकता– लाभ– टिकाउपन, लगातार बढ़ रही लागत, कृषि उत्पादों की अछी कीमत को नकारना, आयात की मात्रा को नियंत्रण मुक्त करना, विदेशी कृषि उत्पादो की आयात शुल्क में भारी कमी, सिंचाई तथा ग्रामीण विकास में खर्च और निवेश में लगातार कटौती, कृषि और कृषि उत्पादों को मिलने वाली रिवायत में कटौती, कृषि और किसानोके लिये संस्थागत क्रेडिट की कमी, स्थानीय और निजी उधार देने पर निर्भरता आदि मुद्दों को भी शामिल किया जाना चाहियें। ये मुद्दें वास्तविकता से जुड़े है परन्तु आंकडो के खेल में दिखाई जाने वाली तस्वीर बिल्कुल विपरीत है। यह जरुरी है कि हम आंकडों में उलझें नही और हमारे लिये फायदेमंद होगा कि हमारा ध्यान मूल कारणों और मेहनत करने वाले लोगों, पर्यावरण व्यवस्था से जुड़े लोगों के स्वास्थ पर पड़ रहे प्रभावों के परिणाम पर रहे।

यू.पी.ए (दो) सरकार की आर्थिक सुधार की कथाकथित नीतियों और उसके द्वारा १९९० में अपनायें गये नियोजित संरचना में परिवर्तन या बदलावों को अमल में लाने से हमारी पर्यावरण व्यवस्था को गंभीर चुनौतियां मिली है। खुले बाजार और हरितक्रांति (१९६० के बाद से) की वकालत करने वालें बिना जांच किये हुयें जी.एम. बीजो, रासायनिक उर्वरको और कीटनाशकों की भूमिका की प्रशंसा करते हुये नही थकते है।

इन नीतियों का विरोध करने वाले अधिकतर लोग कृषि उपयोग में आने वाली चीजों की किमतों में बढोत्तरी, रियायतों में भारी कटौती और वर्तमान के अव्यवहारिक कृषि उद्यम की ओर इशारा करते है। हमें इस परिस्थितियों में सतर्क होकर विवादों में पड़ने से बचना चाहिये। हमारा काम होना चाहियें कि हम इन उपयोग वाली चीजों (कीटनाशक और जी.एम. बीजों) की आवश्यकता पर सवाल उठायें और इनके गलत उपयोग का विरोध करे। हमारा काम मिट्टी और जल स्रोतो के प्रवाह पर बदले न जा सकने वाले प्रभावों सामने लाना और इनके (जी.एम और कीटनाशकों) पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों को कम करने के लिये होना चाहिये। ग्रामीण मेहनती लोगों के बीच अजैविक रसायनों के उपयोग से पड़ने वाले बुरे प्रभावों के प्रति जागरुकता को बढ़ाना चाहियें ताकि वो अपने कृषिगत कार्यों को परंपरिक ज्ञान और लोगों पर आधारित वैज्ञानिक शोधों पर फिर से विचार कर सके।

यदी किसानों की आत्महत्या हमारे लिये कुछ इशारा करती है तो भारत में १० सालों से ज्यादा समय से गंभीर कृषिगत समस्याओं से गुजर रहा है। योर्क विश्वविद्यालय के राजू.जे.दास ने अलने एक महत्वपूर्ण लेख में हमे दोषी माना है। इस लेख में राजू ने दो परिभाषायें दी हैं इनमें से एक ''**कृषि (एग्रेरियन)**''और दूसरी ''**समस्या**'' पर है। पहली परिभाषा में दोनों की अलग–अलग परिभाषा दूसरी दोनों की संमिलित परिभाषा है। शब्द ''एग्रेरियन'' कृषि और इसके सामाजिक संबधो को बताता है और ''**समस्या**'' का मतलब आनेवाली परेशानी (या कई परेशानियों) जिसे तुरंत हल करने की, जरूरत से है। ये समस्याऐं क्या है? प्रत्येक आधे घंटे में एक किसान आत्महत्या करता है या करती है। कृषि से प्राप्त होने वाले रेवन्यू की तुलना में कृषि पर लगनेवाली लागत बहुत तेजी से बढ़ रही है। सच्चाई यह है कि किसानों पर भारी कर्ज है और लाभ आधारित उत्पादन प्रक्रियां ग्रामीण परिस्थितियों को नुकसान पहुंचा रही है। सरकार इस दिशा में और किसानों के लिये बहुत थोड़ा प्रयास कर रही है। राजू ने अपने लेख में दो और बिंदुओं को बताया है। पहला कृषि समस्या पूरी तरह केवल कृषि और ग्रामीण क्षेत्रों से नही जुड़ा हुआ है। दूसरा, कृषि समस्या पूरी तरह से किसानों की समस्या नही है, यह ग्रामीण मजदूरों से भी जुड़ी समस्या है और पूंजीवाद की समस्या से भी जुड़ी है। यह साफ है कि निजी संगठनों की नीतियों के निर्धारण में भूमिका बढ़ रही है (जैसे बी.आर.ए.आइ.) जो कृषि को प्रभावित करता है। कृषि के उत्पादन में बृद्धि लोगों की जगह मशीनों को खिलानें के लिये है। जनवितरण प्रणाली की ढांचागत समस्याऐं या बहुराष्ट्रीय कंपनियों का खाद्य पूर्ती में बढ़ता नियंत्रण बहुत हद तक नयी उदारवादी पूंजीवादी व्यवस्था के विकास से जुड़ा हुआ है। खाद्य समस्या पूरी तरह से समाजिक समस्या के साथ उर्जा और परिस्थितकिय से जुड़ी हुई है।

कृषि से जुड़ी समस्याऐं दो पक्षों के कारण और भी गंभीर और जटिल होने वाली है। इनमें एक पक्ष अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय संगठन के लाभ के हिमायती पक्ष है तो दूसरा प्राकृतिक आपदा का पक्ष जिसमें सूखा, बांढ, जलवायुमें बदलाव है। हमें पता है कि प्राकृतिक आपदा का एक मौलिक इतिहास हैं और लोगों ने अपने आप को इसके प्रति ढ़ाल लिया है हमारी चिंता है कि कैसे उन लोगों को रोका जाये जो बिना सोचे अपने लाभ, के लिये प्राकृतिक आपदा में अप्रकृतिक आयामों को जोड़ते है। इसके लिये अप्राकृतिक तरीके से लाभ की प्रक्रियां के खिलाफ लड़ना है। इस संघर्ष में लोगों से जुड़े वैज्ञानिकों, बुद्धजीवों और शहरी संगठित कार्यशील समुदाय की भागीदारी और सहयोग जरुरी है जिससे अपने बहुत बड़ी जनसंख्या को तेजी से समाजिक आर्थिक न्याय मिल सके। इस संघर्ष को गांव के सजग और रचनात्मक किसानों को जगाकर किया जा सकता है जो बड़े व्यवसायों के पक्ष में नीति बनाने वालों के कारण दबे हुये है। यह अति आवश्यक है और हम लंबा इंतजार नही कर सकते है।

नोट: लेखक किसान सभा, महाराष्ट्रा इकाई के संयोजक है।

३. कृषि परिस्थितकीय: स्वस्थ भविष्य की पहल

२०११ में संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट ''कृषि परिस्थितकीय और भोजन के अधिकार'' के विषय पर दी गयी प्रेस विज्ञप्ति में बताया गया कि ''छोटे किसान अपने उत्पादन को कृषि परिस्थितकीय को अपना कर आने वाले १० वर्षो में दो गुना कर सकते है।'' कृषि परिस्थितकीय

वाले तरीके पर्यावरण और स्वास्थ के लिये भी सुरक्षित है। संयुक्त राष्ट्र संघ के रियों घोषणा पत्र में बताये गये सुरक्षा के सिद्धांतों को अपनाने की जरुरत है, ताकि सुरक्षा के उपायों में कमी को दूर किया जा सके। कई अतंर्राष्ट्रीय संगठनो की रिपोर्ट जिसमें कृषिज्ञान, विज्ञान और तकनीकि विकास अध्यन की अंतर्राष्ट्रीय रिपोर्ट , विश्व बैंक का कृषि पर विश्व स्तर का सबसे बड़ा अध्यन, खाद्य और कृषि संस्थान, विश्व स्वास्थ संगठन और अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनो जिसमें ४०० से अधिक वैज्ञानिक शामिल थें, उन्होंने पाया कि कृषि परिस्थितकीय से जुड़ी पहल ही विश्व खाद्य समस्या का टिकाऊ समाधान दे सकती है। इसकी पुष्टि हाल हि में संयुक्त राष्ट्र भोजन (आहार) पर नियुक्त विशेष प्रतिनिधि ने बताया कि ''आज की तारीख में ५७ विकासशील देशों में कृषि परिस्थितकीय से जुड़ी परियोजनाओं से पता चलता है कि फसलों के उत्पादन में ८० प्रतिशत की बढोत्तरी हुई है, अफ्रीका में यह बढोत्तरी ११६ प्रतिशत रही है।'' बीस अफ्रीकी देशों में हाल की परियोजनाओं से ३ से १० वर्षों में फसलों का उत्पादन दुगुना हुआ है।

''**कृषि परिस्थितकीय**'' एक विज्ञान हैं, जिसमें पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक कृषि विज्ञान के विकास को शामिल किया गया है। इसमें से अंतर्राष्ट्रीय जैवतकनीक और कीटाणु नाशकों को बाहर रखा गया है। इसके अंतर्गत परिस्थितकीय के आयामों और अंगो के उपयोग के साथ मृदा (मिट्टी) जीव और कीटनाशकों का जैविक नियंत्रण आदि को शामिल किया गया है। इसमें परिस्थितकी **ज्ञान की परिचर्चा (प्रसार)** भी शामिल है।

विश्व में लगभग १.५ बिलियन ऐसे किसान जिनके पास ३८० मिलियन खेत है जो कुल भूमि का २० प्रतिशत है। इन किसानों द्वारा विश्व में उपयोग किये जाने वाले भोजन का ५० प्रतिशत उत्पादित करते है (औद्योगिक कृषि ८० प्रतिशत भूमि पर ३० प्रतिशत अनाज उत्पादित करती है।) इन किसानों में से ५० प्रतिशत किसानो ने कृषि परिस्थिकीय को अपनाया है। अत: यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये किसान १० प्रतिशत भूमि पर २५ प्रतिशत भोजन उत्पादित करते है। कल्पना कीजियें कि यदि इन ५० प्रतिशत किसानों को ५० प्रतिशत कृषि भूमि कृषि सुधारों के तहत उनके पास चली जाये। यदि ऐसा होता है तो इनके द्वारा इतना भोजन का उत्पादन किया जायेगा जो सही मायनो में से ज्यादा होगा। हरित क्रांति में सामाजिक सक्रियता की कमी रही है, अबकि कृषि परिस्थितकीय में यह शामिल है, परन्तु इसके लिये आवश्यक है कि यह सहभागिता वाली हो और परस्पर संपर्क का नेटवर्क हो, नही तो यह सफल नही होगी। इसके लिये यह भी जरुरी है कि इसकी सांस्कृतिक रुप से स्वीकार्यता, के साथ पारंपरिक ज्ञान में बदलाव की कोई पहल नही हो और ज्ञान पर चर्चा और प्रसार का प्रयास शामिल हो।

यह आर्थिक कारणों से उपयुक्त हैं क्योकि इसके लिये स्थानीय संसाधनो की जरुरत होती हैं जिनको बाहर से लाने की जरुरत नही पड़ती है। इसका एक फायदा यह भी है कि ये जलवायु परिवर्तन के प्रति बहुत लचीलापन रखती है। ऐसा केवल इसलिये नही है कि इससे विश्व तापमान में बृद्धि होती हैं जैसा कि विखण्डित कृषि में जीवाश्म ईंधन की अत्याधिक रुपत से होता है। परन्तु ऐसे कर्म प्रमाण है जो यह बतातें है कि इसमें सूखें जैसी बड़ी स्थितियों का सामना करने की क्षमता होती हैं।

एकरुपता वाली कृषि विश्व की विविधता वाली कृषि को अपने प्रभाव में लेने की ओर बढ़ रही हैं। एकरुपता वाली कृषि अपने अनुवांशिक और परिस्थितकीय एकरुपता के कारण अतिसंवेदनशील है। देश की महत्वपूर्ण नीतियों को गंभीरता के साथ कृषि परिस्थितकीय के विकास और प्रोत्साहन करना चाहियें। निश्चित तौर पर ऐसी नीतियों को लाने की जरुरत है जो अनुदान को बढायें और कृषि परिस्थितकीय और छोटे किसानों की सुरक्षा के लिये हो। संभवत: इसके लियें सबसे ज्यादा रुकावट राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी का होना है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हितों का भी बड़ा योगदान है जो गलत दिशा में ढकेल रही है। कृषि परिस्थितकीय छोटे और मझौले परिवारों के लिये उपयोगी है और सही मायनों में लोगों के शहरों की ओर पलायन की प्रक्रियां को पलटने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

हाल हि में संयुक्त राष्ट्र ने २०१४ को परिवारिक कृषि का अंतर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया है। संयुक्त राष्ट्र इस वर्ष को परिवारिक किसानों के वैश्विक समुदाय के रुप में मना रहा है। इसका उद्देश्य परिवारिक और छोटे किसानों के महत्व को बताना है। इसके लियें स्थानीय ज्ञान और कृषि के नये टिकाऊ तरीकों का बढ़ावा देना एक प्रमुख पहल है जिससे परिवारिक किसानों का उत्पादन बढ़े और अधिक पोषण और विविधता वाले भोजन व्यवस्था का विकास हो सके। इनकी रोजगार के अवसरों को उपलब्ध कराने और स्वास्थ संबंधी अर्थव्यवस्था में लाखों को सेवा देने के साथ स्थानीय बजारों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। यह भी ध्यान रखने की आवश्यकता है कि कृषि परिस्थितकीय के जरियें हम भारत को भोजन देने के लिये पर्याप्त उत्पादन कर सकते है। ताकतवर पूंजीवादी व्यवस्था जो कहती है कि उससे भूख का हल नही किया जा सकता है। और जब तक असमानता का समाधान नही निकाल सकते है तब तक भूख की समस्या जारी रहेगी। इस पूरे विचार में उत्पादन वितरण का पूंजीवाद के साथ अपनाया जा सकता है। छोटे प्रयास केवल और विकेन्द्रीकृत उत्पादन क्षेत्र भर हो सकते है। संपूर्ण पूर्ती (उपलब्धता) की श्रृंखला में शक्तियों और लाभों को कुछ अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में केन्द्रित होगी। इसलिये भारत को चाहिये कि उत्पादकों का संगठन हो, जो पर्यावरणीय कृषि को बढ़ावा देने के साथ लोगों को टिकाऊ कृषि में लाभ पर भागीदारी और योजना में विकेन्द्रीकरण को भी तय करे। इसके लिये जैवविविधता और भोजन के न्याय को बढ़ावा मिलना

चाहियें। सार में, कार्ल मार्क्स ने अपनी दास कपिताल के तीसरे खंड में लिखा है ''पूंजीवादी व्यवस्था तार्किक कृषि के विपरीत चलती है और तार्किक कृषि पूंजीवादी व्यवस्था के अनुरुप नही है (चाहे पूंजीवादी व्यवस्था कृषि में तकनीकी विकास को बढ़ावा दे फिर भी)। अत: यह जरुरी है कि छोटे किसान अपने आप काम करे या संगठित उत्पादकों के नियंत्रण में काम करे।'' इस विचार पर ध्यान देने की जरुरत है। क्या भारत की सरकार इस पर ध्यान देगी?

नोट: इस भाग को विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त जानकारियों और विचारों के आधार पर तैयार किया गया है।

✦✦

❖ समाचार और घटनाक्रम

एफ.ए.ओ. का विकासशील देशों से कीटनाशकों के उपयोग में कटौती का आग्रह

बिहार में दूषित भोजन खाने से २३ स्कूली बच्चों की मृत्यु पर संतुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य और कृषि संगठन ने कहा है कि विकासशील देशों को अपने बाजारों से खतरनाक कीटनाशकों को हटाने की प्रक्रिया में तेजी लानी चाहीयें। इन बच्चों की मृत्यु स्कूल में मध्यान भोजन में दिये गये चावल और आलू की सब्जी के खाने से हुई थी। बताया गया है कि परोसे गये भोजन में मोनोंक्रोटोफोस मिला हुआ था जो कि डब्लू.एफ.ए.ओ. द्वारा घातक कीटनाशक माना गया है।

एफ.ए.ओ. ने अपने वक्तव्य में बताया है कि ''बहुत से विकासशील देशों से प्राप्त अनुभव बताते है कि इस तरह के घातक कीटनाशक पर्यावरण और मानव के स्वास्थ पर गंभीर खतरा है। अधिक खतरनाक कीटनाशक उत्पादों को छोटे किसानों को उपलब्ध नही होने चाहिये क्योकि इनके पास कीटनाशको के विषय में पर्याप्त ज्ञान की कमी के साथ छिडकाव के उपकरण की कमी हैं, सुरक्षा उपकरण और भंडारणकी सुविधा नही होती है। इसके कारण वे इस तरह के उत्पादों का उचित प्रबंधन नही करपाते है।''

स्त्रोत: http://www.indianexpress.com/news/fao-urges-developing-nations-to-cut-down-on-pesticide-use/1148795/

लाभकारी कृषि के लिये जलवायु अध्यनन

पंजाब में कम समय के अंतराल में मौसम में परिवर्तन कृषि वैज्ञानिकों के लिये चिंता का विषय बना हुआ है। ६–७ जनवरी २०११ को पठानकोट में बर्फबारी १२ अगस्त,२०११ में लुधियाना में २४ घंटे में ४०० मी. मी. वर्षा और ९ फरवरी २०१२ में भटिंडा मे ४० से. तापमान अपनी ओर ध्यान आकर्षित करता है। ये इसलिये भी महत्व का हैं क्योकि पंजाब आधे देश को भोजन उपलब्ध कराता हैं और उसकी जलवायु में इस परिवर्तन का कृषि पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन के लिये सतत शोध (रिसर्च) की आवश्यकता हैं।

पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के जलवायु परिवर्तन स्कूल के निदेशक डॉ. यस. यस कौल का कहना है कि ''हमने १९६० से २०१२ तक के तापमान का अध्यन किया और हमने जो पाया वह चौकाने वाला था। अद्ययन से सामने आया कि पंजाब के न्यूनतम तापमान में १ अंश से. की बढोत्तरी चावल और गेंहू की फसल के लिये अच्छा संकेत नही है। विश्व बैंक का अनुमान है कि अगले तीन दशकों में भारत के तापमान में १.२५० से. की बढोत्तरी रहेगी। सही मायनों में कृषि क्षेत्र के लिये यह चौकाने वाला होगा। डॉ. कौल के अनुसार हमें इसके बारे में सोचने की आवश्यक्ता है।''

स्त्रोत: http://www.indianexpress.com/news/climate-study-for-better-agriculture/1140693/0.

अध्ययन अनुमान कि खराब उत्पादन से सलाना २ लाख करोड़ का नुकसान:

प्याज की फसल का व्यवसायीयों और खराब अर्थ व्यवस्था के चलते जमाखोरी पर अध्ययन से प्राप्त निष्केषी से चर्चा में आया कि देश में उत्पादित ३० प्रतिशत सब्जियां और फल उपयोग के लायक नही होते है, क्योकि खेती के बाद ये खराब हो जाते है। इन उत्पादों के कारण नुकसान अनुमानत: दो लाख करोड़ का होता है। व्यवसायिक संगठन ऐसोचेम का मानना है कि इस नुकसान के पीछे खाद्य प्रसंस्करण इकाईयों की कमी और आधुनिक शीत भंडारगृहों की सुविधाओं का अभाव है।

सरकार ने इस बात को स्वीकार किया है कि उद्यानिकी की ओर ज्यादा ध्यान देने की जरुरत है। पिछले कुछ वर्षो में इस दिशा में कुछ प्रयास किये गये है परन्तु होने वाले नुकसान में कोई अंतर नही आया है। राष्ट्रीय उद्यनिकी बोर्ड के प्रबंध निदेशक राजेन्द्र तिवारी कहते है कि राष्ट्रीय उद्यनिकी मिशन को १२ वी पंचवर्षीय योजना में मजबूत बनाया जायेगा। सरकार आर्थिक सहयोग के साथ खेती के बाद के प्रबंधन पर भी ध्यान दे रही है।

स्त्रोत: http://www.indianexpress.com/news/perishable-production/1165189/0

कांग्रेस का आंकलन की भोजन अधिकार कानून से यू.पी., बिहार, गुजरात को फायदा

गैर कांग्रेसी राज्यों उत्तरप्रदेश, बिहार और गुजरात ऐसे राज्य है जिनको भोजन के अधिकार (खाद्य सुरक्षा) कानून का सबसे ज्यादा फायदा मिलेगा। महाराष्ट्र, राजस्थान और झारखंड दूसरे ऐसे राज्य है जिनको भी फायदा पहुचने वाला है। कानून में रियायत प्राप्त भोजन वाले अनाजों को अगले चुनाव के लिये महत्वपूर्व सुधार माना जा रहा है। बिहार में यह कांग्रेस को जनता दल (यू.) के साथ गठबंधन में मदद कर सकता है और इस गुजरात में बीजेपी के प्रधानमंत्री के उम्मीदवार के सामने चुनौती देने के रुप में देखा जा सकता है।

स्रोत: http://www.indianexpress.com/news.food-act-to-benefit-up-bihar-gujarat-most-congress-data/1182226/

विदर्भ जन आंदोलन समिति का दावा कि किसानों की आत्महत्या में बढोत्तरी

विदर्भ जन अंदोलन समिति पिछले १५ वर्षों से किसानों के लिये काम कर रही हैं। समिति का दावा है कि महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में किसानों की आत्महत्या की घटना फिर से बढ़ रही है। अधिक वर्ष और बाढ़ के कारण लाखों हैक्टेयर कृषि भूमि पर पानी भर जाने के कारण खेती नही की जा सकती है। इस स्थिति के कारण क्षेत्र में किसानों की परेशानी और व्याकुलता बढ़ी है।

संस्था के अध्यक्ष किशोर तिवारी ने केंद्र और राज्य के लिये गये सहायता उपायों के वादों के प्रति निष्क्रियता और लापरवाही का आरोप लगाया है। इनका कहना है कि ''मुख्यमंत्री के द्वारा २०० करोड़ की सहायता की घोषणा का एक पैसा भी प्रभावित किसानों तक नही पहुंचा है, इससे स्थिति और बिगड़ी है।''

स्रोत: http://timesofindia.indiatimes.com/city.nagpur/Farm-suicides-on-rise-toll-671-Vidarbha-Jan-Andolan-Samiti articleshow/24509796.cms?intenttarget=no

मोनसेंटो के ग्लाइफोसेट का कैसर संबंध, एक अध्यन का दावा:

मोनसेंटों के श्वरपतवार नाशक उत्पाद ''राउंड अप'' में ग्लाइफोसेट प्रमुख रुप से पाया जाता है। मोनसेंटो इसका बड़ी मात्रा में उत्पादन करता हैं, जिसका विश्व में बड़े स्तर पर उपयोग होता है। कई अध्यनों ने ग्लाइफोसेट का मानव शरीर/स्वास्थ पर पड़ने वाले खतरों पर प्रकाश डाला है। एक महत्वपूर्ण अध्यन से सामने आया है कि मोनसेंटो का सबसे अधिक बिकने वाला राउंड अप खरपतवार नाशक में मिला हुआ पदार्थ स्तन कैंसर का एक कारण है। यह पदार्थ कोशिकाओं के विकास और विभाजन के कारण स्तन कैंसर के लिये उत्तरदायी है।

यह अध्यन यू.यस.ए. के नेशनल लाइब्रेरी ऑफ मेडिसिन जनरल में प्रकाशित हो चुका हैं और शीघ्र ही भोजन और विषविज्ञान के एक जनरल में प्रकाशित होगा। हाल हि में किये गये बहुत से अध्यन बताते है कि ग्लाइफोसेट मुख्यरुप से इंडोक्झन डिसरपटर है। यह डिसरपटर एक रसायन है जो हारमोन संरचना के साथ मिल सकता है। इस तरह यह उस अवस्था के विकास का कारण हो सकता है जिससे जन्मजात कमी आ सकती हैं और कैंसर ट्यूमरों हो सकते हैं। वैज्ञानिकों ने यह भी खोज निकाला है कि मोनसेंटो की फसल में पाये जाने वाली बी.टी. टॉक्सिन मानव शरीर में ऑक्सीजन पहुंचाने वाली लाल रक्त कणिकाओं को नुकसान पहुंचाती है। वैज्ञानिकों ने कैंसर को कि ड़नी में खराबी से जोड़ा है। मोनसेंटो के राउंड अप को कुछ समय पहले ही अस्टिम, पर्किसन और मानसिक रोग से भी जोड़ा गया था।

स्रोत: http://www.collective-evolution.com/2013/06/14/groundbreaking-study-links-monsantos-glyphosate-to-cancer/#sthash.jEUnkCFO.dpuf

मोनसेंटो/माहिको और अन्य के खिलाफ आपराधिक मामलें की सुनवाई में तेजी

एक महत्वपूर्ण निर्णय में कर्नाटक उच्च न्यायालय के न्यायधीश ए.यस.पाचापुरी कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय धारवाड़ (यू.यस.) के वरिष्ठ प्रतिनिधि, महिकों/मोनसेंटो और सतगुरु की उस याचिका को खारिज कर दिया जिसमें उनके खिलाफ दायर आपराधिक याचिका को रद्द करने की मांग की गयी थी। राष्ट्रीय जैवविविधता बोर्ड और कर्नाटका जैवविविधता बोर्ड ने भारत की पहली जी.एम खाद्य फसल बी.टी. बैगन के प्रसार के लिये जैवचोरी को लेकर .

आदराधिक प्रकरण दायर किया था। यह याचिक (CRLP 10002/2013) कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय धारवाड के कुलपति और रजिस्टर डॉ. यच.यस.विजय कुमार द्वारा दायर की गयी थी। इससे संबंधित याचिका (CRLP 10003/2013) विश्वविद्यालय के रिटायर्ड कुलपति डॉ. यस.ए.पाटिल ने दायर की थी, जो पूर्व में कर्नाटक कृषि मिशन के अध्यक्ष और भारतीय कृषि शोध संस्थान, दिल्ली के अध्यक्ष रह चुके है।

स्रोत: लियो एफ. सल्दाना (leo@esgindia.org), भार्गवी यस.राव (bhargavi@esgindia.org), अर्थुर पेरिया. ट्रिब्यूनल के आदेश, २१ मार्च, २०१३ और अन्य संबंधित दस्तावेंजो को ई.यस.जी. की बेवसाइट www.esgindia.org से प्राप्त कर सकते है।

✦✦

❖ बहस, दृष्टिकोण और विश्लेषण

भारतीय जैव तकनिकी नियंत्रक प्राधिकरण बिल २०१३

भारातीय संविधान की धारा २१ जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सुनिश्चित करता है। साथ ही संविधान की धारा ५१ क (VII) में बताया गया है कि प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा और उनका विकास आधार–भूत कर्तव्य है। सर्वोच्च न्यायालय ने बताया है कि जीवन के अधिकार का वास्तविक अर्थ मानवीय सम्मान के साथ जीवन का अधिकार जिसमें भोजन के अधिकार के साथ अन्य मूलभूत आवश्यकतायें शामिल हैं। न्यायलय ने यह भी व्यवस्था की है कि धारा २१ नागरिकों के पर्यावरण सुरक्षा के अधिकार को भी सुनिश्चित करता है।

भारतीय जैवतकनिकी नियंत्रक प्राधिकरण बिल, २०१३ को विज्ञान और तकनिकी मंत्रालय ने तैयार किया था और २३ अप्रैल,

२०१३ को इसे संसद की पटल पर रखा गया था। इस बिल के विभिन्न पहलुओं जैसें उद्देश्य, बिल को तैयार करने की प्रक्रिया, बिल को तैयार करनेवाले व्यक्तियों, कौन इसको लागू करेगा, कैसे इस बिल को अमल में लाया जायेगा, इससे किनको लाभ मिलेगा कौन इससे प्रभावित होगे, उल्लंघन की स्थिति में दंड क्या होगे, पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों की भरपाई कौन करेगा, बड़े रुप में इसका क्या प्रभाव पड़ेगा क्यों लोगों के पास स्व–सुरक्षा को लेकर शक्तियां हैं, पर विचार करने की जरुरत है।

इसके विश्लेषण की आवश्यकता है कि क्या सही मायनों में यह बिल भारतीय नागरिकों के कर्तव्यों और मूल–भूत अधिकारों के पक्ष में है। पिछले तीस वर्षों से ज्यादा समय से वैज्ञानिक प्रयास कर रहें है कि वे जैवतकनिकी के प्रभावों को समझ सके। जैवतकनिकी मुख्य रुप से जीवधारियों (पौधे, जानवरों, बैक्टीरिया आदि) के अनुवांशकीय पदार्थों में बदलाव से जुड़ा हैं। जिसका औद्यौगिक रुप में उपयोग हो सकता है। इस तकनिकी के कुछ महत्वपूर्ण उदाहरणों में गोल्डेन राइस (जिससे विटामिन अ की ज्यादा मात्रा होती है), बी.टी. कपास (ऐसा कपास जो कीटों को मारने के लिये विशेषप्रकार का रसायन छोड़ता है), विशेष प्रकार की मछली आदि। समान्यतौर पर अनुवांशिकीय संयोजन या बदलाव जानवर–जानवर, जानवर–वनस्पति, वनस्पति–जानवर–मानव, प्रकार में से किसी एक प्रकार का हो सकता है। अत: जैवतकनिकी का औद्यौगिक उपयोग बड़े स्तर पर कृषि, दवाईयों, पशुओ से जुड़े उत्पादों, प्रसंस्करित खाद्य उद्योग आदि क्षेत्रों में देखा जा सकता है। इसको लेकर कई नैतिकता से जुड़े प्रश्न सामने आये है जैसे कि क्या एक जानवर जिसे मानव जीन के साथ जैवतकनिकी के द्वारा जोड़ा गया हैं, उसे मानव माना जायेगा? क्या हम प्रजातियों के लिये बनी सीमाओं को लांघ रहे है? और क्या हमें भगवान होने का अधिकार है? क्या अलग–अलग जीनों से तैयार जीव भी प्रभावित होते है? क्या इन सब से हम मानव के दासों (सेवकों) की एक नस्ल तैयार करने की ओर बढ़ेंगे या बढ़ रहे है? इसके अलावा यह भी जानना जरुरी है कि इस तकनिकी का मानव स्वास्थ और समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

अब इस तथ्य को भी स्वीकार्य कर लिया गया है कि जीवित संबंर्धित जीवधारियों के प्रभावों का पूरी तरह से अनुमान नही लगाया जा सक्ता है। यदि कोई वैज्ञानिक कोई अनुमान देता है तो उसकी प्रमाणिकता १०० प्रतिशत नही हो सकती है। उदाहरण के तौर पर जब अनुवांशिक रुप से संबंर्धित फसल का किसी परंपरिक फसल के साथ मिलान किसी भी तरह हो जाता है तों कीटो और खाद्य श्रृंखला पर पड़ने वाले प्रभाव का अनुमान नही लगाया जा सकता है। इसकी संभावना हो सकती है कि बिमारीयां प्रजातियों की बाधा को पार कर जाये और बिमारी एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति में पहुंच जाये। इनका प्रभाव घरेलू और जंगल की जैवविविधता पर भी पड़ सकता है और इसके साथ ही मानव के स्वास्थ पर अल्प और दीर्घ कालिक प्रभाव पड़ सकता हैं। सबसे महत्वपूर्ण यह समझना जरुरी है कि होनेवाले परिवर्तनों या बदलावों को रोका नही जा सकता है और यह बदलाव अपरिवर्तनीय होगा। उदाहरण के तौरपर प्रजातियों के विलुप्त होने को लिया जा सकता है। जैवतकनिकी वाली फसलें पूरी खाद्य श्रृंखला को प्रभावित कर सकता है और अखिरी स्तर के उपभोक्ताओं के पास यह स्वतंत्रता नही होगी कि वे जैवतकनिकी पर आधारित/जीवों/फसल उत्पाद को अस्वीकार कर सके।

इस बिल का उद्देश्य ''प्रभावी और प्रभावशाली तरीकों से यह सुनिश्चित करना कि जैवतकनिकी के सुरक्षित उपयोग को बढ़ावा मिले'' इस उद्देश्य को बताया नही गया हैं पर इसमें निहित है कि शायद जैवतकनिकी सुरक्षित नही है और इसलिये इसके नियंत्रण की आवश्यकता है। इससे यह सवाल भी जुड़ा है कि क्या कोई नागरिक अपने आप को इस तकनिकी से खुद को अलग रख सकता है? इस तकनिकी के उपयोग द्वारा तैयार कियें गये उत्पाद या उत्पादन में (एल.एम.ओ.के) लिविंग मॉडीफाईड़ ऑर्गेनिझ्मस होने या न होने का लेबल (जानकारी) के बाद भी यह पूरी तरह से नही बताया जा सकता है की, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से एल.एम.ओ. का व्यवहार कैसा और कितना होगा। इसके अलावा हमारे पास ऐसा कोई रास्ता नही होगा जिससे इनकों हम अपने शरीर में प्रवेश करने से रोक सके। उदाहरण के तौर पर गाय दूध से तैयार चीज जिसमें एल.एम.ओ. शामिल हो उस पर एल.एम.ओ का लेबल लगाने की जरुरत नही हैं। जब यह हमारे शरीर मे जायेगा तो यह बताना या अनुमान लगाना संभव नही होगा कि यह हमारी प्रतिरोधक क्षमता या तंत्र को कैसे प्रभावित करेगा। इस बिल पर ध्यान देने के बाद यह साफ तौर पर पता चलता है कि प्रभावी उपायों के जरियें जैवतकनिकी के सुरक्षित उपयोग को बढ़ावा देने से यह सुनिश्चित नही किया गया है कि यह लोगों के व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वंय के जीवन की रक्षा के कर्तव्य के विरुद्ध नही हैं।

संसद द्वारा पास किये गये खाद्य सुरक्षा कानून २०१३ का उद्देश्य नागरिकों को पर्याप्त भोजन की उपलब्धता को तय करता है। इस कानून पर प्रभावी योजनाबद्ध तरीकों से अमल मे लाने से यह तय होगा कि भीषण गरीबी से गुजर रही एक बड़ी जनसंख्या जीवन जीने में समर्थ होगी। इससे जीवन का संवैधानिक अधिकार और स्वतंत्रता सुनिश्चित होगी। भोजन के अधिकार को प्रभावी बनाने की प्रक्रियां को लेकर कई सवाल उठाये गये है, लेकिन सिमे संविधान में तय व्यक्तिगत स्वतंत्रता को लेकर कोई विरोधामास नही है।

इस बिल को तैयार करने से जुड़ी मंशा पर भी सवाल उठते है। इसमें कई मुद्दे है जो लोगों के जीवन, स्वतंत्रता और लोगों के भोजन के पसंद के अधिकार से जुड़े है। इस बिल के प्रावधान साफ तौर पर पेटेंट कानून (संशोधित), २००६ से विरोधामासी है। पेटेंट कानून, पेटेंट की प्रक्रिया को बताने के साथ सूक्ष्मजीवों के पेटेंट की

अनुमति भी देता है। इसी प्रकार बीज कानून, बायोटेक कंपनियों को जैवविविधता की कीमत पर बीजों को बाजार में लाने में सहायता करेगा जिससे लंबे समय से चली आ रही किसानों को बीज संरक्षण करने की परंपरा और आपसी बीजो की लेन–देन या वितरण पर भी विपरीत प्रभाव पडेगा। इससे व्यक्तिगत और पसंद की स्वतंत्रता से समझोता होगा।

सहयोग: शान्था भूषण (shantha.s.bhushan@gmail.com) असोसियेट प्रोफेसर (FLAME) एफ.एल.ये.एम.ई.,पूणे और कल्पवृक्ष के सदस्य (www.kalpavriksh.org).

जी एम.ओ. के प्रभाव और उससे जुड़ी चिंतायें

अनुवांशिक रुप से संबर्धित (उन्नत) जीवधारी (जी.एम.ओ.) को जीवित संबर्धित जीवधारी या लिविंग मॉडीफाईड ऑर्गेनिझ्मस (एल.एम.ओ.) के रुप में भी जाना जाता है। इसको आधुनिक जैवतकनिकी (अनुवांशिक संबर्धित तकनिकी/अनुवांशिक इजीनियरिंग/पुनर्सयोजन डी.एन.ए. तकनिकी) के उत्पाद माना जाता है जिन्हे अनुवांशिकी (डी.एन.ए.) में बदलाव से तैयार किया जाता है। प्रजातियों पर मनचाहें लक्षणों को बाने के लिये अलग प्रजातियों के जीनों को मिलाकर बदलाव लाया जा सकता है। यह बदलाव प्रकृति के द्वारा न होकर मानव द्वारा किये जाते है जिससे प्रजातियों का अप्राकृतिक संयोजन होता है जैसे टमाटर के जीन के साथ मछली के जीन का मिलान कराना। दो अलग–अलग प्रजातियों के जीनों का मिलान प्रक्रिया किमती होने के साथ इनपर मिलान कराने वाली कंपनियों का पेटेंट होता है। इस काम में मुख्य रुप से बींज/कृषि सायन/दवाईयों के क्षेत्र से जुड़ी कंपनियां सक्रिय है।

कृषि, वानिकी, और मछलियों से जुड़े क्षेत्र मे जी.एम.ओ. का उपयोग एक विवादस्पद मुद्दा है क्योकि भोजन और पर्यावरण में जी.एम.ओ. को लाना जोखिम भरा है। यह इसलिये भी गंभीर मुद्दा है क्योकि जी.एम.ओ. से होने वाले बदलाव को फिर से पहली जैसी स्थिति में नही लाया जा सकता है। वर्तमान में इस क्षेत्र में चल रहें अधिकार रिसर्च (शोध) का मुख्य विषत विशिष्ट लक्षणों वाली जी.एम.फसलों को तैयार करना है। ऐसा करने के पिछे यह उद्देश्य है कि ये फसले, लगने वाले कीडों प्रति प्रतिरोधी होगी या खरपतवारों के साथ रह सके (एच.टी.फसल) या सूखे की स्थिति में भी उत्पादित की जा सके। ९० प्रतिशत जी.एम. फसलों को बी.टी. या एच.टी.फसल के रूप में विकसित किया गया है। एक.बी.टी. फसल को मिट्टी के बैक्टिरीया (बासिलस थूरिनजीनसिस) को मिलाकर तैयार किया जाता है। इसमें पौधे के विभिन्न किस्मों के सभी भागों को बी.टी टॉक्सिन से जोड़ा जाता है जो कि एक विशेष प्रकार के बैक्टिरीया को मारने में समर्थ होता है। एक एच.टी.फसल तैयार करने के लिये पौधों की प्रजातियों में बैक्टिरीय से जीन को डाला जाता हैं ताकि फसलें खरपतवारों के साथ रह सके और बीडों को स्वयं नष्ट कर सके दोनों स्थितियों में कुछ और अलग प्रजातियों के जीनों को मुख्य फसल के डी.एन.ए. में डाला जाता है ताकि चाहे गये लक्षणों या विशेषताओं को प्राप्त किया जा सके।

जी.एम. फसलों को बढ़ावा देने के लिये प्रभावी मार्केटिंग की रणनीतियों को अपनाया जाता है। इसके लिये अभूतपूर्व उत्पादन का वादा, कम कीटनाशकों का उपयोग, समृद्धि देने वाली बताया जाता है। साथ ही यह भी प्रचार किया जाता है कि यह तकनिकी विश्व स्तर पर खाद्य सुरक्षा लाने वाली फसल है। जबकि वास्तविकता यह है कि यह अक्सर किसानों को फायदा पहुंचाने में फेल हो जाती हैं और मुख्य रुप से छोटें और मझौले किसानों की सहायता करने की जगह परेशानी देने वाली हैं। जी.एम.ओ के स्वास्थ, पोषकता, पर्यावरण, गैर जी.एम. प्रजातियों, जैवविविधता गैर लक्षित कीडों/पौधों, मिट्टी, सूक्ष्मजीव धारियो, पानी, कृषि जैवविविधता, बीजों की उपलब्धता और कीमत, खेती और खेत, जीविका और समाजिक– आर्थिक ढांचे पर विपरीत प्रभाव सामनें आ रहे है।

वर्तमान में विश्व के कुल कृषि भूमि का केवल ३.४ प्रतिशत कृषि क्षेत्र जी.एम. फसलों में मुख्य रुप से बी.टी. सोया, बीटी मक्का, बीटी कॉटन, बीटी केनोला शामिल है। इनको मुख्य रुप से पांच देशों (यू.यस.ए., ब्राजील, अर्जेन्टाएना, कनाडा और भारत) में उगाया जाता है। आज भारत में उगाये जानेवाली इकलौती जी.एम.फसल बी.टी कॉटन की खेती से जुडी नीचे बतायी गयी स्थितियां सामने आयी है।

१. बी.टी कॉटन में लगने वाले कीटों ने बी.टी. टाक्सिन के प्रति अपनी प्रतिरोधक क्षमता को बना लिया है। इसका परिणाम यह हुआ की बी.टी कॉटन में लगने वाले कीट नष्ट नही होते है। इससे निपटने के लिये कंपनियों ने और ज्यादा बिषैली बी.टी कॉटन को विकसित किया। अबतक हमारे पास इसकी बोलगार्ड–I, बोलगार्ड–II, और बोलगार्ड–III है। वैश्विक पर्यावरण अधिक प्रतिरोधक क्षमता वाले कीटों और खरपतवार के कारण खतरे मे है। जी.एम.फसलों के प्रति कीटों और खरपतवार की प्रतिरोधक क्षमता का विकास होने से इन फसलों का उद्देश्य असफल हुआ हैं।
२. जी.एम.फसलों की कीटों को रोकने में सफल न होने के कारण इनको नष्ट करने के लिये कीटनाशकों का उपयोग बढ़ा है। इसके साथ ही दूसरे क्रम कीटों में बृद्धि हुई है जैसे भोजन से जुडें कीडें सफेद तितलियां आदि।
३. वर्षा आधारित कृषि (महाराष्ट्रा के विदर्भ और मराठवाडा) वाले क्षेत्रों में बी.टी कॉटन असफल रहा है।
४. बी.टी कॉटन के बीज कीमती है और इसके बीजों पर एकाधिकार के कारण बीजों की कीमतों में बढोत्तरी इस हद तक पहुंच गयी है

कि कंपनियों और राज्य सरकार के बीच कीमत में नियंत्रण को लेकर न्यायालय में कोई प्रकरण चल रहे है।

५. कॉटन के बीजों की परंपरिक किस्मों (जैसे–गैर बी.टी. कॉटन बीज) की बाजार में उपलब्धता नही है। किसानों के पास कीमती बी.टी कॉटन बीजों के अलावा कोई विकल्प नही है। बीजों में बाजार का एकाधिकार है और इसके बीजों की विविधता उपलब्ध नही है क्योकि सभी लोगों ने एक किस्म को ही उगाना शुरु कर दिया है। महाराष्ट्रा केन्द्रीय कॉटन शोध संस्थान (सी.आइ. सी.आर.) के सहयोग से बी.टी. कॉटन के विकल्पों की खोज में लगा है।
६. बी.टी. कॉटन की फसल को मवेशियों के चरने के कारण मृत्यु होने की घटनायें सामने आयी है। आंध्र प्रदेश सरकार ने किसानों से अपील की है कि वे अपने मवेशियों को बी.टी.कॉटन के खेत में नही चरायें।
७. विशेष रुप से कॉटन वाले क्षेत्र में किसानों की आत्महत्याऐं होती है। अधिकतर प्रकरणों में छोटें और मझैलें बी.टी.कॉटन उगाने वाले किसान होते है।
८. कॉटन उत्पादन करने वाले क्षेत्र में उत्पादन में कोई बढोत्तरी नही हुई है। २०१२ में एक समाचार रिपोर्ट के अनुसार, महाराष्ट्रा सरकार ने आधिकारिक तौर पर माना है कि कपास के उत्पादन में लगभग ४० प्रतिशत तक की कमी आयेगी। बी.टी.कॉटन की फसल के ४ मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र में असफल हो जाने के कारण प्रदेश में कॉटन के उत्पादन में ३.५ मिलियन क्विंटल से २.२ मिलियन क्विंटल की कमी आयी है। राज्य ने २००० करोड़ रुपये कपास उगाने वाले ४ मिलियन किसानों को क्षतिपूर्ति के रुप में दिया गया है।
९. जैविक कॉटन को उगाने वालो को उनके उत्पाद को खारिज करने की स्थिति का सामना करना पड़ता है। इसके पीछे जैविक कॉटन के बी.टी. कॉटन से संयोजन को माना जाता है। भारत के कृषि मंत्रालय ने यह माना है कि जीन और गैर जीन फसले/खेत एक साथ नही हो सकते है।
१०. बी.टी. कॉटन का मानव सुरक्षा को लेकर कभी भी परिक्षण नही किया गया है क्योकि यह खाद्य फसल नही है। लेकिन, खेतों और मिलो में काम करने वाले कर्मचारियों ने बी.टी.कॉटन से अलर्जी की शिकायत की है।
११. बी.टी. कॉटन को भोजन के रुप में नही लिया जाता हैं परन्तु इससे बने तेल का उपयोग, बीज का दूध और अप्रत्यक्ष रुप से, मवेशियों को कपास के बीज से तैयार केक को खिलाकर प्राप्त किया गया दूध का उपयोग होता है। बिमारियों में बढोत्तरी के कारणों की जांच के लिये जरुरी है कि इस का परिक्षण किया जायें कि बी.टी.कॉटन अब हमारे आहार का हिस्सा है।

२०१२ से बी.टी. बैंगन पहली खाद्य फसल है। इस खाद्य फसल को भारत से जोड़कर देखा गया है। भारत में इसमें प्रतिबंध बिना किसी तय समय सीमा के लगाया गया हैं क्योकि राज्य सरकारों, अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिकों और लोगों द्वारा इसके प्रति गंभीर चिंताये जाहिर की गयी थीं पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के निर्णय में साफतौर पर बताया है कि आंध्र प्रदेश में लाखों जैविक किसानों द्वारा कीटनाशकों रहित प्रबंधन के साधारण तरीकों को अपनाया जाता है जिसे अपनाया जाना चाहियें न कि बैंगन के पौधों को कीटनाशक में बदला जाना चाहियें।

कई सरकारी रिपोर्ट जैसे को (२००४ में कृषि पर जैवतकनिकी पर टास्क फोर्स, २०१० में पर्यावरण मंत्रालय द्वारा बी.टी. बैंगन पर प्रतिबंध, २०१२ में कृषि पर संसदीय स्टैंडिग कमेटी द्वारा, पश्चिमी घाट विशेषज्ञ पैनल की अंतरिम रिपोर्ट और २०१३ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त तकनिकी विशेषज्ञ कमेटी (टी.ई.सी.)रिपोर्ट में अनुंशसा की गयी है कि कानून से जुड़ी कमियों को पूरा करने की जरुरत है। सभी जी.एम.फसलों के खेतों में परिक्षण को रोका जाना चाहियें। दीर्घकालिक और विभिन्न स्तरों पर सुरक्षा के परिक्षण किया जाना चाहियें। भारतीय मूल की प्रजातियों पर अनुवांशिक संवर्धन नही होना चाहियें। इसमें सुरक्षा के सिद्धांतों को अपनाया जाना चाहियें और जैवविविधता में किसी भी प्रकार के जीन के मिलावट से रोकने के लिये उपायों को किये जाना चाहियें। कई नागरिकों द्वारा यह सवाल किया जाता है कि जब आसान विकल्प उपलब्ध है तो जीन वाली भोजन/फसलों की क्या आवश्यकता है। भारत पूरें देश को खिलाने के लिये पर्याप्त भोजन उगाता है जबकि इसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा प्रत्येक वर्ष सड़ जाता है। भारत में भोजन की विविधता की कोई कमी नही है क्योकि भारत विश्व में बीजों की विविधता में घनी है और इसके अलावा भारत कई पौधों की जन्मभूमि रहा है। इसलियें हमें इन पौधों को न बदले जा सकने वाली जी.एम. तकनिकी के द्वारा जोखिम में नही डालना चाहियें।

सहयोग: तेजल (tejal.roots@gmail.com) व्यक्तिगत तौर पर परस्थितकीय, पर्यावरण जागरुकता और संरक्षण पर सक्रिय रुप से काम कर रही है।

डब्ल्यू.टी.ओ. समझौता: भारत की जीत एक गलत फहमी या वास्तविकता?

१. भारत के पक्षकारों ने हमारे खाद्य भंडारों को बाहरी परिक्षण के लिये रख दिया है और बाहर भंडार को लेकर किये जाने वाले निर्णय में अपनी संप्रभुता को खोदिया है। डब्ल्यू.टी.ओ. की कृषि की समिति अब हमारें अनाज के भंडारो पर निगरानी रखेगी।

२. यदी केंद्र और राज्यों के भंडारो से जुड़ी जानकारी निर्धारित अटिल प्रक्रिया को पूरा करके दे दी जाती है तो भारत को अपने न्यूनतम समर्थित मूल्य को एक स्तर पर तय करना होगा। न्यूनतम समर्थित मूल्य के तय करने के बाद इसमे न तो बढोत्तरी की जा सकेगी और न तो नयी फसल को अपने भंडारो में जोड़ा जा सकेगा।
३. अपने भंडारों को व्यवस्थित करने के लिये बड़ी मात्रा में कागजी कार्यवाही और लागू करने के खर्च को जोड़ दिया गया है। इस पैसे को कही और लाभकारी तरिकें से लगाया जा सकता था।
४. भारत को अब अपने भोजन खरीदी से जुड़ी संरचना और प्रक्रियां को तय करना होगा और इसमें किसी भी तरह के बदलाव के लिये सी.ओ.ए. की अनुमति जरुरी होगी। यह हमारें लिये अपमान की स्थिति को लाने के साथ एक ऐसा दौर लायेगा जिसमें हमारी घरेंलू खाद्य सुरक्षा की नीतियों में विदेशी दखल होगा। बाली बैठक के बाद भारत ने अपने जन भंडारों के खाद्य सुरक्षा में उपयोग के अधिकार को खो दिया है।
५. भारत ने अपने खुद के लिये उन सभी अवसरों पर रुकावट डाल ली है जिनका उपयोग कृषि क्षेत्र को सहयोग देने में कर सकता है। डब्लू.टी.ओ. और सी.ओ.ए. के विशेष खाद्य उत्पादन को बढाने और अपने छोटे और शक्तिहीन किसानों के लिये जीविका सुनिश्चित करने में हो सकता हैं।
६. व्यापारिक सुविधायें बनी रहेगी, जिसका अर्थ हैं भारत को अपने बाजारों में विदेंशी उत्पादों को सुविधा देते रहना होगा। बड़े कृषि उत्पादों के निर्यातक देशों (यू.एस.ए. और यूरोप) का यह लक्ष्य रहा है कि भारतीय बाजारों को कृषि उत्पादों के लिये खोला जायें। उनका यह लक्ष्य पूरा हो सकता हैं, भारत में अभी बाहर से भेजें जानेवाले कृषि उत्पादों को लेकर नियंत्रण है। परन्तु यह समाप्त हो सकता है।
७. हमें आशा करनी चाहियें कि बाली बैठक के बाद हमारे यहां बाहरी कृषि उत्पादों की बांढ आयेगी। इससे भारतीय किसानों की समस्या बढ़ेगी जो पहले से ही कृषि क्षेत्र की उपेक्षा और विपरित घरेंलू नीतियों के कारण परेशान है। अनुवांशिक रुप से संबर्धित उत्पादों के लिये व्यापार की सुविधा एक महत्वपूर्ण विषय है इसको जी. एम. फसलों और भोजन के विरोध में चल रहे घरेलू विरोध को समाप्त करने से जोड़ा जा सकता है। बड़े निर्यातक देशो के भंडारो में जी.एम.मक्के, सोया आदि उत्पाद रखे हुयें जो बाजार को खोज रहे है।
८. भारतीय किसान यू.यस., कनाडा, आस्ट्रेलिया और यू.के अनुदान प्राप्त कृषि उत्पादों से प्रतिस्पर्धा करने में असमर्थ होगें और शहरों के स्लम की ओर पलायन करने के लिये बाद्य होंगे। ये देश अनाजों को बाजार के साथ घरेलू भंडारों को उपलब्ध करायेंगे जिनका उपयोग खाद्य सुरक्षा को चलाने में होगा।
९. इससे भारत को लोगों के सामने परिक्षण के लिये कटघरे में खड़ा है जिसके हाथ बांध दिये गये हैं और उन सभी विकल्पों को छीन लिया गया है जो खेतों की मलाई और भविष्य की खाद्य सुरक्षा से जुड़े हुये थे।

स्रोत: कु खपवळर sold out to the WTO, सुमन सहाय, जीन कैंपेन, The Asian Age, http://www.asianage.com/columnists/how-india-sold-out-wto-888

भारतीय जैवतकनिकी नियंत्रक प्राधिकरण बिल २०१३ पर विश्लेषण

आधुनिक जैवतकनिकी से कुछ जोखिम जुड़े हुये है। जी.एम. उत्पादों के पक्ष में किये गये दावें अनुवांशिक रुप से संबर्धित फसलें अधिक उत्पादन करेगी या इसमें बहुत कम रासायनिक उर्वरकों और कम कीटनाशकों की जरुरत होगी इसकी अभी तक वैज्ञानिक पुष्टि नही हुई है। यह एक विवादस्पद तकनिकी है और इससे जुड़े सुरक्षा के उपायों को स्थापित किया जाना अभी बाकी है। बिल में अपीलीय प्राधिकरण के सदस्यों के चुनाव में पारदर्शिता की कमी हैं और लाभ के पढों से जुड़े विवादों को भी हल नही करता है।

वर्तमान में अधिकतर जैव तकनिकी से जुड़ी कंपनियां बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियां है जो सक्रिय रुप से नयी फसलों को भारत में पहुंचाने के लिये लगी हुई है। इस बिल में प्रावधानों के उल्लंघन करने वालो के लिये निर्धारित दंड कम और प्रभावहीन है। इन कंपनियों को कानून का पालन करना आसान होगा। ये दंड को चुका कर गैर जरुरी परिक्षणों की जारी रख सकती है और असुरक्षित उपायों को बाजार में ला सकती है। यह बिल जी.एम.उत्पादों (उपयोग, रख–रखाव और लाने–लेजान) से जुड़ी दुर्घटना की स्थिति में उत्तरदायित्व को लेकर कुछ नही कहता है। इसमें जी.एम.को लेकर पड़ने वाले अल्प और दीर्घकालिक प्रभावों के लिये दायित्व निर्धारित करने के लिये कोई विशिष्ट प्रावधान नही है।

जैवतकनिकी लोगों के हित से जुड़ा महत्वपूर्ण विषय हैं, इसमें, वन, मत्स मानव स्वास्थ और अन्य क्षेत्र शामिल है। इसलिये यह जरुरी होना चाहियें कि सभी महत्वपूर्ण जानकारियों को लोगों के विचार– विमर्श और जांच– पड़ताल के लिये उपलब्ध करायी जायें। बी.आर.ए.आई. बिल में यह बताया गया है कि जानकारियों को लोगों के समक्ष तभी रखा जायेगा यदि ऐसा करना किसी व्यक्ति को नुकसान नही पहुंचायेगा। क्या इसका मतलब यह नही है कि नुकसान देह उत्पादों पहलुओं से जुड़ी जानकारियों को कानून के द्वारा गोपनीय रखने का प्रयास किया गया है? यह चिंता जनक बात हैं। उपभोक्ता, किसान, दलाल, व्यवसायी या व्यापारी या कोई अन्य को जी.एम.

से जुड़े पहलुओं के लिये स्पष्ट तौर पर नही बताया गया है। इस बिल को विज्ञान और तकनिकी मंत्रालय ने तैयार किया है। इस बिल का स्वरुप और इसको अमल में लाने की व्यवस्था को उद्योगों को ध्यान में रखकर किया गया है। इसमें सामाजिक और पर्यावरणीय पहलुओं की अनदेखी की गयी है। आधुनिक जैवतकनिकी से जुड़े पूरे देश में प्रसांगिक है। एक केन्द्रीकृत संस्था को इस बिल में अधिकार दिया गया है कि वह सभी राज्यों के लिये काम करेगी। इस प्रकार किसी संस्था (जैवतकनिकी नियंत्रक अधिकरण) को राज्यों के अधिकार क्षेत्र को देना समस्या वाला है। क्योकि, राज्यों का विषय और उनके अधिकार क्षेत्र से जुड़े, संस्था के निर्णयों को अमल में लाने की बाह्यता विवाद खड़ा कर सकती है। यह गंभीर मुद्दा है की इस स्थिति के निराकरण कैसे होगा? इसपर अभीतक कोई स्पष्टता नही है।

इस बिल के प्रावधानो में भारतीय संविधान के ७३ वें और ७४ वें संशोधनों के द्वारा विभिन्न स्थानीय निकायों को दी गयी स्वतंत्रता की अनदेखी की गयी है। पंचायतों की भूमिका को लेकर भी स्पष्टता नही है और निकामों द्वारा लिये गये निर्णय जो बी.आर.ए.आइ बिल के विरुद्ध है उसका क्या होगा इसपर भी बिल मे कुछ नही बताया गया है। यह बिल जैवविविधता अधिनियम २००२, (No.१८, २०१३), पर्यावरण सुरक्षा कानून,– १९८६ और सूचना के अधिअकार, २००५ के उद्देश्यों से साफतौर पर विरोधामासी है। विवाद की स्थिति में किसका निर्णय मान्य होगा और कौन अंतिम निर्णय ले सकता है इसपर भी कोइ स्पष्टता नही है।

बी.आर.ए.आइ. के सदस्यों को जैवतकनिकी विशेषज्ञ होना जरुरी है। ऐसे विशेषतों के पास घटील सामाजिक और पर्यावरणीय समस्याओं को हल करने की पर्याप्त अनुभव नही हो सकता है। बिल से जुड़े जोखिमों पर ध्यान देने से साफ है कि यह समाज और पर्यावरण को खतरें में ड़ालता है। बी.आर.ए.आई. के पास शक्तियां है कि वो खेतों में हो रहे जी.एम. के परिक्षण से जुड़ी जानकारियों को मांग सकता है और तथ्यों की जांच कर सकता है। एक संगठन को सभी शक्तियां देना अपने आप में अप्रत्याशित होने के साथ समस्या भी है।

इस बिल को लेकर एक मूलभूत सवाल उठता है कि क्या बी.आर.ए.आई. लोगों की मलाई के लिये है या जैव तकनिकी कंपनियों के हित में है? इस बिल में एकरुपता, विचार और अन्य कमियां होने के कारण यह एक कमजोर बिल है।

सहयोग: राधिका मुले (radhika.mule@flame.edi.in), बी.ए. अंतिम वर्ष की फ्लेम, पुणे की छात्रा है। यह लेख सितंबर २०१३ में पर्यावरण कानून विषय के अंतर्गत तैयार किया गया था।

बी.आर.ए.आई. बिल से जुड़ी कमियाँ और अन्य मुद्दे

२३ अप्रैल २०१३ को लोकसभा में भारतीय जैवतकनिकी नियंत्रक प्राधिकरण (बी.आर.ए.आई.) बिल को विज्ञान और तकनिकी मंत्री जयपाल रेड्डी ने पेश किया था। इस बिल का उद्देश्य कानूनी प्रक्रियाओं को प्रभावी और दक्ष बनाते हुये आधुनिक तकनिकी के सुरक्षित उपयोग को प्रोत्साहित करना है। इस बिल से जुड़े कुछ चिंताजनक मुद्दे:

१. पहले से निर्धारित व्यवस्थाओं को खारिज करने के लिये अपर्याप्त कमजोर कारण और देश में अनुवांशिक रुप से संबर्धित जीवधारियों से जुड़ी वर्तमान कानून व्यवस्था में खतरनाक सूक्ष्म जीवधारियों या कोशिकाओं के उत्पादन, उपयोग आयात और निर्यात, तथा भंडारण, १९८६ नियम है। पर्यावरण वन मंत्रालय में अनुवांशिक इंजीनियरिंग समीक्षा समिति (GEAC) संस्था को बताया है। इसलिये सवाल उठता है कि क्यों बी.ए.आइ. के तहत एक नयी व्यवस्था को क्यों बताया गया है और क्यो इसे वर्तमान व्यवस्था से अच्छा बताया गया है?

२. समिति के सदस्यों की शैक्षणिक योग्यता:

   बी.आर.ए.आइ. को सलाह देने के लिये कई निकाय हैं परन्तु अंतिम निर्णय बी.आर.ए.आइ. के द्वारा लिया जायेगा। बिल की धारा ६(२) में प्रावधान है कि बी.आर.ए.आइ समिति के सदस्यों को विज्ञान और तकनिकी क्षेत्र से होना चाहियें। इसमें मानव शास्त्र, सामाजिक विज्ञान, पर्यावरण और जनस्वास्थ को छोड़ दिया गया है जबकि यह बहुत जरुरी है कि इन क्षेत्रों के लोगों की भी भागीदारी निर्णय प्रक्रियां में होना चाहियें।

३. लंबी अवधि की परिक्षण योजनाओं का आभाव:

   कई ऐसे खाद्य है जो यह बतातें है कि जी.एम.ओ. फसलें लोगों को लंबे समय के बाद भी प्रभावित कर सकते है। जी.एम.ओ. के लंबे समय बाद के प्रभावों से जुड़े परिक्षणों की योजनाओं की बी.आर.ए.आइ. बिल में कमी हैं।

४. सूंचनाओं को सीमित उपलब्धता:

   बिल में सूंचनाओं की उपलब्धता को सीमित किया गया है और बिल को सूचना के अधिकार से अलग रखा गया है। अत: स्पष्ट है कि बी.आर.ए.आइ. जिस व्यवस्था में निर्णय लेगी वह अपारदर्शी और अप्रजा तांत्रिक है।

५. सीमित जन भागीदारी:

   बी.आर.ए.आइ. बताये गये प्रावधानों और जी.एम.से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर उठायें गये प्रकरणों (जिनमें जीवधारियों के उत्पादन या निर्धारण और बताये गये उत्पादों के उपयोग शामिल है।) पर लोगों से सीमित समय में अपत्तियों और सुझावों को मांग सकती है। यह संदेहास्पद प्रावधान है। भारत ने बी.टी. कॉटन और बी.टी.बैगन को लेकर विरोध को देखा हैं और इससे प्रभावित हुयें

बिना बी.आर.ए.आइ. बिल को तैयार किया है जिसका उद्देश्य जैवतकनिकी को बढ़ावा देना है।

६. बी.आर.ए.टी. वनाम एन.जी.टी:
जैवतकनिकी नियंत्रक अपीली न्यायधिकरण (बी.आर.ए.टी.) एक निकाम है जो उन शिकायतों की सुनवाई करेगा जो बी.आर.ए.आइ. द्वारा दियें गयें आदेशों या निर्णय से जुड़े हो। राष्ट्रीय हरित न्यायधिकरण (एन.जी.टी) उन अपीलों की सुनवाई करेगी जो विभिन्न न्यायल द्वारा दियें गये निर्णयों और आदेशों पर होगी और यह पर्यावरण निर्णय प्रक्रिया पर अंतिम निर्णय देगी। जैवतकनिकी का पर्यावरण और मानव पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा तो सही मायनों में अपीलों की सुनवाई एन.जी.टी. के द्वारा किया जाना चाहियें। बी.आर.ए.आइ. बिल को एन.जी.टी. अधिनियम (२०१०) के बाद तैयार किया गया है अत: क्या यह माना जाना चाहियें कि यह एन.जी.टी. अधिनियम (२०१०) के प्रावधानों के ऊपर होगा और बी.आर.ए.आई का निर्णय अंतिम होगा?

७. अपर्याप्त दंड और उत्तरदायित्व के प्रावधान की कमी:

बिल में प्रावधान है कि गलत जानकारी देने के लिये तीन महिनें की जेल और ५ लाख रुपये का दंड और गैर मान्यता वाले फील्ड परिक्षण करने पर ६ महिने की जेल और दो लाख रुपये का दंड का प्रावधान है। दंड के ये प्रावधान पूरी तरह से अपर्याप्त है क्योकि जैवविविधता और जनस्वास्थ पर अल्प और दिर्घकालिक प्रभाव पड़ सकते है। बिल में उत्तरदायित्व तय करने को लेकर कोई प्रावधान नही है यह एक बहुत गंभीर मूल है।

सार: पारदर्शिता, संपूर्ण उत्तरदायित्व और कठोर दंड और दूषित करने वाले देश और सुरक्षा के सिद्धांत की कमी के कारण मानव और अन्य जीवों को भारत में और बाहर गंभीर जोखिम में डालेगा।

सहयोग: दिवा सिंह (divasingh@flame.edu.in) बी.ए. अंतिम वर्ष, फ्लेम, पुणे में अध्यनरत है। यह लेख पर्यावरण कानून विषय पर तैयार किया गया था।

✦✦

❖ केस स्टडी

खाद्य संप्रभुता के लिये मोटे अनाज आधारित जैवविविधता वाली खेती को पुनर्जीवित करने की पहल:

मोटे अनाज यानी मिलेट की फसल में पौष्टिकता बहुत ज्यादा होती है। इन फसलों को अन्य अनाजी फसलों की तुलना में कम प्राकृतिक संसाधनों की आवश्यकता होती है जैसे पानी, मिट्टी के खनिज लवण। ये जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीली भी होती है। इसके विपरित बीते वर्षों में इन फसलों की खेती के क्षेत्र में कमी आयी है। ओडीशा राज्य की नीतियां धान की खेती और कुछ अन्य फसलों को बढ़ावा देती है और मिलेट से होने वाले विभिन्न प्रकार के फायदों की अनदेखी कर रही है। ओडीशा के स्थानीय स्तर पर काम करने वाली संस्था निर्माण क्षेत्र की कुल जनसंस्था ८००० हैं जिसमें से ७० प्रतिशत आदिम जनजातियां है। अधिकतर लोग संवेदनशील आदिवासी समुदाय पी.वी. टी.जी. कुटिया कोड जनजाति से है। एक अनुमान बताता है कि लगभग ८२ प्रतिशत लोग गरिबी रेखा के नीचें आते है। इस समुदाय के लोग सुदूर पहाडीन क्षेत्र में आवास करते है और अपनी जीविका को वर्षा आधारित कृषि से अर्जित करते हैं। इनमें से ही कुछ लोग पहाड़ी दलानों पर स्थांतरित कृषि करते है (स्थानीय भाषा में इसे पोड्डुचासा कहते है)। समुदाय के लोग वनों से प्राप्त गैर इमारती वन उत्पादों को बेचकर कमाई करते हैं। इनकी कुल कमाई का १५ प्रतिशत हिस्सा एन.टी.एफ.पी. (गैर इमारती वन उपज) से मिलता है। ये शहरों में मजदूरी करके भी कमाई करते है। उनके आर्थिक क्षेत्र में गुड़िया और पदार पर कृषि है। ये पहाडी दलानों और घाटियों में कृषि करते है और पदार इनका मुख्य आहार है।

कुटिया कोंड समुदाय के साथ पहल:

कुटिया कोंड समुदाय के पास मिश्रित कृषि की लंबी और घनी परंपरा रही है। पहले ये लोग ४०–५० प्रकार की किस्मों और फसलों की मिश्रित कृषि करते थे। हरित क्रांति के सक्रिय होने के चलते घान की खेती में लगने वाली लागत में सब्सिडी के कारण और जनवितरण प्रणाली में चावल की अधिकता होने के कारण मोंटे अनाजों और संबंधित फलीदार फसल के बीच परिवर्तन को गहरा धक्का लगा है। २०११ तक किस्मों में कंधमाल और नयागढ़ जिलों के कुटिया कोंड आदिवासी समुदाय की सक्रिय भागीदारी के द्वारा कुछ मिलेट (मोटे अनाजों) को पुनर्जीवित करने का सफल प्रयास किया है।

२०११ में निर्माण ने गुमा ग्राम पंचायत के एक गांव में मिलेट पर एक अध्यन किया। इससे पता चला कि परंपरिक मिलेट आधारित जैवविविधता वाली कृषि व्यवस्था में कमी आयी है और इसका प्रभाव परिवार के स्तर पर खाद्य और पोषण पर पड़ा है। कई दौर के परामर्श के बाद यह महसूस किया गया कि मिलेट में तापमान में बढोत्तरी, पानी की कमी और कुपोषण के मुद्दों को हल करने की समर्थता है। निर्माण ने राज्य द्वारा बढ़ायी जा रही कृषि में दखल देते हुये कंधमाल जिलें की कृषि जैवविविधता को संरक्षित करने का निश्चय किया।

कंधमाल कार्य क्षेत्र:

जनवरी २०१२ में निर्माण ने कंधमाल जिलें के तुमुदिंबधा ब्लाक की गल्मा ग्राम पंचायत के १४ गांवों के ३०६ परिवारों के साथ अपने प्रयास की शुरुआत की थी। सभी गांव २००० फिट से ३००० फिट की ऊंचाई पर तुमुदिबंधा ब्लाक के प्रमुख क्षेत्र से दक्षिणी–पश्चिमी भाग में अवस्थित था। जिसकी दूरी ब्लाक से १० से ३० किलो मीटर

की है और यह पक्की सड़क के माध्यम से जुड़ा है। यह कभी १२–१३ किस्मों तक पहुंच गयी है और विविधता लगभग खत्म हो गयी हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि प्रति व्यक्ति को मिलने वाली पौष्टिकता में कमी आयी है। इससे जिलें में खाद्य सुरक्षा की स्थिति और ज्यादा खराब हुई है।७ २००८ में संयुक्त राष्ट्र संघ के भोजन कार्यक्रम और मानव विकास संस्थान ने खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से क्षेत्र को असुरक्षित माना है। यहां के लोग साल में २०० से २१० दिन भोजन विशेष रुप से चावल खरीदनें के लिये बाह्य हुयें हैं। इस स्थिति के चलते लोग स्थानीय साहूकारों और बाहरी साधनों के ऊपर अपनी खाद्य अनाज की जरुरतों के लिये निर्भर हुयें है।

जीविका सुरक्षा के लिये मिलेट आधारित जैवविविधता वाली कृषि के पुनर्जिवित करने की पहल:

निर्माण नियमित रुप से ग्रामीण स्तर पर समुदाय के साथ मीटिंग को आयोजित करता है। जिसमें वर्तमान में चल रहे भोजन और पोषण की असुरक्षा के मुद्दें और कृषि के तरीकों में संभवित बदलाव के उपायों के रुप में वर्तमान स्थिति पर विचार– विमर्श किया जाता है। समुदाय में माना है कि मिलेट आधारित कृषि को फिर से जीवित करने की जरुरत है। इसके लिये तय किया गया है कि ग्रामीण स्तर के संस्थानों को तैयार किया जाये ताकि समुदाय आवश्यक बीजों को जुटाने और उनका मूल्यांकन कर सकें। इस प्रक्रियां में १४ ग्रामीण स्तर की संस्थाओ को बनाया गया है। गांव की संस्था मिलेट बीज बैंक की स्थापना करेगे। एक समुदाय आधारित व्यवस्था को अपनाया गया है जिसमें ग्रामीण स्तर की संस्थायें खाद्य उत्पादन व्यवस्था में अपना दावा कर सके। ऐसा करने के पीछें उद्देश्य है कि बीज बैंकों की स्थापना द्वारा जीविका का विकास हो सके। मिलेट आधारित कृषि जैवविविधता की व्यवस्था को पुनर्जिवित करने के लिये समुदाय के साथ ज्ञान को साझा करके जानकारियों को उपलब्ध कराना भी शामिल है। समुदाय के समूहों ने बीजों की जरुरत का मूल्यांकन किया और निर्माण ने विभिन्न स्त्रोतों से १२ किस्मों की व्यवस्था की जो समुदाय के लिये एक बार के सहयोग तक सीमित था। ग्रामीण संस्थाओं को बीजों को एक पूंजी के रुप में दिया गया ताकि वे समुदाय की जरुरतों को पूरा करने के लिये बीज बैंक की स्थापना कर सके।

स्थानीय लुप्त बीजों की उपलब्धता से इसके उपयोग की अवधि भी बढ़ी है और समुदाय को अब ज्यादा उत्पादन मिल रहा है। इसके अलावा लोगों की खाद्य
और कुटिया परिवार के
ज्यादा प्रतिवर्ष सुनिश्चित

पोषण, बींज और महिल

कार्यक्रम में महिलाओं को महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिये उत्साहित किया गया था। ग्रामीण स्तर की संस्थाओं की मीटिंगों में समुदाय ने महिलाओं को यह जिम्मेदारी दी की वो आफिस की देख–रेख करे। महिलाओं ने बीजों के चुनाव से जुड़े विचार–विमर्श में संक्रिय रुप से भाग लिया, और उन्नहोने बीजों के मूल्यांकन, जुटाने या संग्रह करने और वितरण में भी भागीदारी रही है। इस प्रकार महिलाओं की भागीदारी के साथ एक ही सीजन में २५ फसलों की किस्मों को जीवित किया गया था।

जैवविविधता उत्सव या पर्व:

फसलों के तैयार हो जाने के बाद कुटिया कोंड समुदाय गांव के स्तर पर बुरलांग यात्रा (बीज पर्व) को मनाते है। इस पर्व के पीछें मातृभूमि और बीजों के प्रति आभार व्यक्त करना हैं, जिनकी मदद से समुदाय ने फसलों को तैयार करके भोजन प्राप्त किया हैं। फसल की विविधता के पुनर्जीवित होने के बाद कुटियां कोडं द्वारा ग्राम पंचायत स्तर पर सम्मिलित रुप से एक पर्व का आयोजन किया जाता है। यह अपने आप में कृषि जैवविविधता प्रदर्शित करने के लिये विभिन्न स्थानीय बीजों, कृषि के तरीका है। प्रदर्शित किये जाने वाले बीजों में मिलेट, दालें, चावल, तेल के बीज और सब्जियां शामिल है। इसके अलावा कृषि से जुड़े बीजों, अनुभव और ज्ञान को साझा किया जाता है। इसमें समुदाय के सदस्य, राज्य के विभिन्न हिस्सों और पड़ोसी राज्य आंध्रप्रदेश से आये किसान भी शामिल होते है।

राज्य और स्थानीय प्रशासन की भूमिका:–

राज्य और जिलें की सरकारी अधिकारियों को साथ लेकर चलने के लिये कार्यशालाओं और परामर्श सभाओं का आयोजन किया गया है। राज्य की नीतियों और कार्यक्रमों में उपयुक्त बदलाव के लिये और अधिक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।

विस्तार:

मिलेट आधारित कृषि व्यवस्था के बहुत से फायदों को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुचाने के लिये पोस्टरों को तैयार करके गांव में वितरित किये गये थे। एक समाचार पत्र मकृषक स्वराजफ के मिलेट पर्व पर एक विशेष अंक प्रकाशित किया गया था।

मध्यान भोजन में मिलेट आधारित भोजन को शामिल करना:

अब प्रयास चल रहा है कि मिलेट को बच्चों के लिये चल रहे दो भोजन के अधिकार कार्यक्रमों मिड–डे–मील (मध्यांह भोजन) और अंगन बाडी में शामिल किया जाये।

उपलब्धि:

मिलेट आधारित कृषि व्यवस्था को फिर से जीवित करने से १४ गांवों के खेतों फसलों की विविधता बढ़ी है। यह विविधता १३ से २५ प्रकार की रही है और परिवार के स्तर पर खाद्य सुरक्षा की अवधि में भी विस्तार हुआ है। बीजों की कमी का सामना करने वाले समुदाय के पास बीजों की पर्याप्तता है। सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि परंपरिक ज्ञान के आधार को फिर से वापस लाना रहा है जो फसल की विविधता खोने के साथ खो चुका था। सरकारी अधिकारियों, विचारकों, और मीडिया के साथ मिलेट पर चर्चा को शुरु किया गया है। इससे किये जा रहें प्रयासों को उड़ीसा राज्य की मुख्य धारा से जोड़ने में सहायता

मिली हैं।

अगला कदम:

- पंचायत, ब्लाक, जिला और राज्य स्तर पर इस प्रकार की खेती करने वालों का एक नेटवर्क तैयार करना हैं जिससे समुदाय की आवाज प्रशासन तक पहुंचे और कृषि की नीतियों–योजना–कार्यक्रमों में सकारात्मक बदलाव लाया जा सकें। महत्वपूर्ण रुप से यह माना गया है कि समुदाय को मिलेट से जुड़े छोटे–बड़े मुद्दों पर तैयार करके उनकी आवाज को राज्य और देश के स्तर पर चर्चाओं में शामिल किया जायें।
- मिलेट का मिड–डे–मील और आंगनबाडी मे शामिल करना।
- पी.जी यस.के तहत जैविक सर्टिफिकेट लेना।
- मिलेट के उत्पादों को तैयार कर बाजार के साथ जोड़ना और महिलाओं के प्रयासों को मजबूत करना।

निष्कर्ष:

निर्माण का यह प्रयोग आज कंधमाल जिलें के अर्द्धशुष्क क्षेत्र की कृषि, भोजन और पोषण की समस्या का हल बताता है और देश के अन्य अर्द्धशुष्क क्षेत्रों को रास्ता बताने की क्षमता भी रखता है। इस प्रयास में अस्थिर वर्षा और जलवायु परिवर्तन की चुनौतिया का सामना करने की समर्थता है और यह खेती की व्यवस्था में लचीले पन को भी तय कर सकता है।

सहयोग: प्रशांत मोहंती निर्माण के संस्थापक सदस्य और वर्तमान में सचिव और कार्यकारी निदेशक के पद पर कार्यरत है।

संपर्क के लिये: निर्माण प्लाट– ड–३/७५१– निलाद्रि विहार, पी.ओ. शैलीश्री विहार, भुवनेश्वर– ७५१०२१.
Ph: 674-2720417/9438294417,
वेबसाइट : http://www.nirmanodisha.org/ourteam.php.

एक छिप्पी धरोहर: दवाई के गुण वाला चावल

''सहज समृद्ध'' जैविक किसानों का एक संगठन है जिसने कर्नाटका के दवाई के गुण वाले चावल की पहचान कर उनका द्स्तावेंज तैयार किया है। किसानों का यह संगठन विविधता को संरक्षित और पुना:वापस लाने के लिये सामने आया है। सहज समृद्ध ने ''अपने चावल को बचाना है'' अभियान के साथ मिलकर उपभोक्ताओं, उत्पादकों, संग्राहक का नेटवर्क चावल के प्रचार–प्रसार के लिये तैयार किया है। इसके लिये उत्पाद को मफ्साझा जैविकफ्फ नाम दिया है जो कि एक ब्रांड है।

एशिया में चावल को बड़ा महत्व दिया गया है। चावल लाखों लोगों के जीवन से जुड़ा है। एशिया में चावल बड़ी गहराई से, संस्कृति, धरोहर, अध्यात्म, परंपरा और नियमों से जुड़ा है। शताब्दियों से चावल भारतीयों की संस्कृति परंपरा से जुड़ा है, यह अनाज पृथ्वी और स्वर्ग, भगवान और मनुष्य और सभी उत्सवों और रिवाजों से

जुड़ा रहा है।

चावल की संस्कृति ५००० वर्ष पुराने समय के वेदों, समहिताओं, पुराणों, बौद्ध और जैन साहित्यों में हमे मिलती है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र, कृषि परशारा, काश्यपीयकृषिसुकटी और कुछ अन्य जगहों पर भी चावल का वर्णन हैं। सबसे पुराना चावल का साक्ष्य यजुर्वेद (१५००–८०० ई.पू.) मिलता है और संस्कृत की रचनाओं में भी इसका वर्णन है। चरक और सुसरुता में चावल के बारे में मानव स्वास्थ से जुड़ी और ज्यादा जानकारी मिलती है।

वैदिक समय में चावल को उसके औषधिक गुण के कारण जाना जाता था। परंपरिक दवाईयों में चावल का उपयोग और भोजन संबंधी उपयोग परस्पर संबंधित है। चावल के मुख्य उत्पादों के रुप में लिया जाता था जो कुछ औषधियों वाली किस्मों से बनाये जाते थे। चावल के परंपरिक रुप से औषधी के उपयोग की पुष्टि वैज्ञानिक अध्यनों द्वारा भी हुआ है।

कर्नाटका के पास भी औषधी गुण वाले चावल की कई किस्में थी जिनकों दशकों पूर्व उगाया जाता था। कर्नाटका में जलवायु, मिट्टी, भू–रचना और खेंती के तरीकों की विशेषता राज्य को चावल की विविधता देती थी। कर्नाटक के कुछ स्थानों में दवाईयों के उद्देश्य के लिये धान की विभिन्न किस्मों के उपयोग की एक ऐतिहासिक प्रक्रियां रही हैं परन्तु, इस पर ध्यान नही दिया गया। दवाईयों के गुण वाले चावलों की किस्मों में कारी बाथा, कलामी, कारीकालावे, अम्बेमोर और सन्नंकी महत्वपूर्ण किस्में है।

कारी बाथा को सगरा और सोरबा क्षेत्र के वर्धा नदी बेसिन में उगाया जाता था। इसके औषधिक गुण के कारण दाद के उपचार में किया जाता था। इसको गुड़ के साथ मिलाकर शरीर को ठंडा रखने के लिये शक्तिवर्धक रुप में लिया जाता है। त्वचा की समस्याओं के लिये चावल के आटे, लालमिट्टी और नीबू के ज्यूस के पेस्ट को प्रभावित शरीर के भाग में लगाया जाता है। इस किस्म का एक अनोखा लक्षण है कि यह बांढ के जल में चार महिने तक डूबी रह सकती है।

कलामी को राज्य के तटीय क्षेत्र में उगाया जाता है। यह बहुत स्वादिष्ट होने के साथ पाइल्स के उपचार में भी उपयोगी है। इस किस्म को लंबे समय के लिये रखा जाता है। क्योकि यह मान्यता है कि धान जितनी पुरानी होती हैं उसका दवाईयों वाला गुण उतना ज्यादा होता है। इसके अलावा यह एसिडिटी और ठंड को भी नियंत्रित करता है।

सन्नंकी एक अन्य किस्म है जिसमें भी औषधी वाले गुण होते है जिसका उपयोग डायरिया के उपचार में किया जाता है। इसको उत्तर कनारा जिले के सिरसी और मुंड गोंडू के क्षेत्र में उगाया जाता है। इस किस्म में बढियां सुगंध होती है और इसका उपयोग बिरयानी और केसरी भात बनानें में होता है। अधिकार्य एक अन्य पुरानी किस्म है जिसका उल्लेख हमारी परंपराओं में मिलता है। एक पुरानी कहावत है कि इस किस्म को ''धार्मिक फसल'' माना जाता है और यह परंपरा है कि शपथ लेने के समय इसको हाथ में पकड़ा जाता है। इसका उपयोग भी डायरिया के उपचार में किया जाता है।

अम्बिमोर किस्म को बेलगाम जिले के वर्षा वाले क्षेत्र में कुछ किसानों द्वारा उगाया जाता है। इस चावल को पकाने में मिलने वाली सुगंध सुखद होती हैं और इसे बिमार लोगों को दिया जाता है। शुष्क क्षेत्र में होने वाली धान की किस्में 'दोद्दोबाथा' को कोलार जिले और कर्नाटका के ग्रामीण क्षेत्रों में उगाया जाता है। इसको कई बिमारियों के उपचार में उपयोग में लाया जाता था। इसका उपयोग डायरिया के उपचार में भी होता है। एक परंपरिक मिठाई मबर्फीफ चावल दूध को विशेष प्रकार से मिलाकर गुड़ के उपयोग से बनायी जाती है। करिनीलू किस्म को बैंगलौर जिले के कनकपुरा तहसील में उगाया जाता है और इसका उपयोग पीलिया की दवाई के रुप में किया जाता है।

चावल के कुछ परंपरिक उपयोग वैज्ञानिक अध्यनों से प्रमाणित किया गया है। चावल का उपयोग त्वचा के इलाज, सूजन घाव और त्वचा के दागों के इलाज में किया जा सकता है। कुछ स्थितियों में चावल की बालियों में कुछ अन्य जड़ी बूटियों को मिलाकर दवाईयों के प्रभाव को बढ़ाया जाता है। चावल का अक्सर पेट की खराबी, जलन, बदहजमी के उपचार में किया जाता है। भूरे (ब्राउन) रंग के चावल का उपयोग स्तन और पेंट के कैंसर और अन्य रोग के उपचार में किया जाता है। डायरिया, बदहजमी और मितली के उपचार में भी किया जाता है। पुरानी पीढ़ी ही केवल इन औषधिक उपयोग गुणों को जानती हैं जबकि नयी पीढ़ी इसकी अनदेखी कर रही है। दुर्भाग्य ही है कि सभी अनुवांशिक संसाधन दुर्लभ होने की स्थिति की ओर जा रहे है। फसलों की प्रजातियों को उगाने पर अब ध्यान नही दिया जाता है। जबकि, इस कीमती संशाधनों को पुन: स्थापित करने और पुनर्जीवित करना बड़ा महत्वपूर्ण है क्योकि शायद हम इस घनी संस्कृतिक धरोहर को खो रहे है।

सहयोग: अनिता रेड्डी (reddyanitha88@gmail.com) शोधार्थी और स्वतंत्र लेखक है। आप ने संम्मानित अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार 'ASIA PACIFIC RICE JOURNALIST AWARD 2009' प्राप्त किया है। वर्तमान में आप साझा समृद्ध की असोसियेट निदेंशक है।

संपर्क के लिये – सहज समृद्ध, नं. ७, ७ मेन, सुल्तानपाल्या, बैंगलोर – ५६००३२. फोन – २३६५५३०२ / ९८८०८६२०५८
Website - www.sahajasamrudha.org

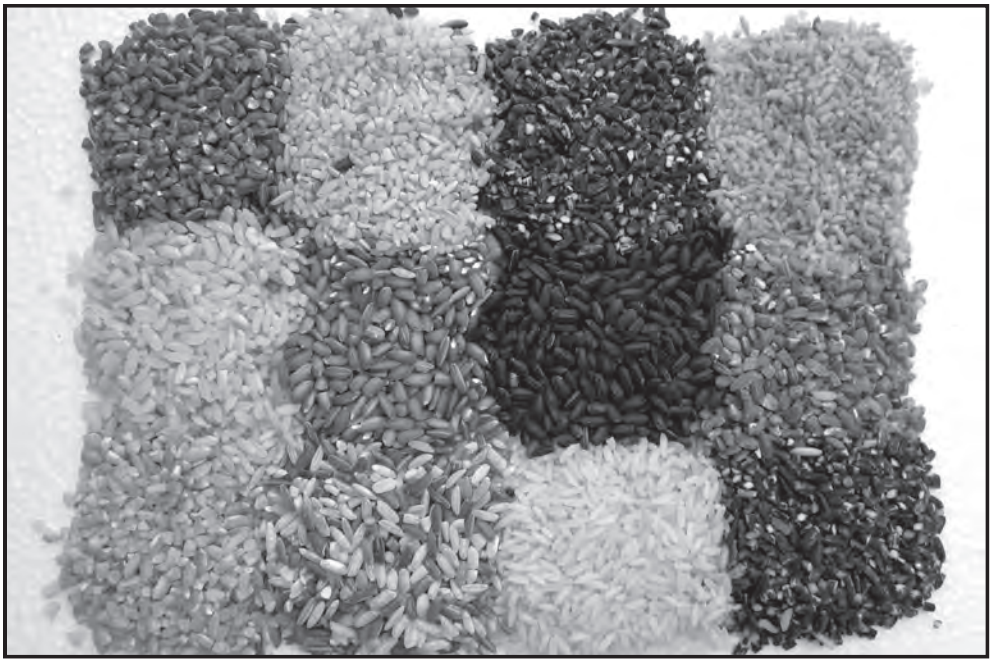

पाठकों के लिए संदेश:

प्रिय पाठकों, यदि आप समुदाय व संरक्षण की प्रति किसी अलग पते पर प्राप्त करना चाहते है तो कृपया हमें अपना पता kvoutreach@gmail.com पर या नीचे लिखे पते पर भेजे दें।

समुदाय व संरक्षण : समुदाय आधारित जैव विविधता संरक्षण तथा आजीविका सुरक्षा अंक ५ नं. २ अप्रैल २०१३– अक्टूबर २०१३

संकलन और संपादन : मिलिन्द वाणी

परामर्श एवं संपादकीय सहयोग : नीमा पाठक

संपादकीय सहयोग : अनुराधा अर्जुनवाड़कर, पंकज सेखसरिया, शर्मिला देव और सीमा भट्ट

हिंदी अनुवाद : विकल समदरिया

कवर फोटो : प्रशांत मोहंती, कृष्णा प्रसाद और अनिता रेड्डी

अन्य फोटों : प्रशांत मोहंती, कृष्णा प्रसाद और अनिता रेड्डी

प्रकाशक :
कल्पवृक्ष,
अपार्टमेंट ५, श्री दत्ता कृपा, ९०८,
डेक्कन जिमखाना, पुणे–४११००४.
फोन : ९१–२०–२५६७५४५०,
फैक्स : ९१–२०–२५६५४२३९
ई–मेल : KVoutreach@gmail.com,
वेबसाइट : www.Kalpavriksh.org

आर्थिक सहयोग : मिजेरिओर, आचेव, जर्मनी

निजी वितरण के लिये

प्रकाशित विषयवस्तु (Printed matter)

सेवा में,